* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ८ रुपये

गोपालका गोप्रेम

तुलसी-पूजन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनानहेतुनान्यानपि तारयन्तः॥

वर्ष ८९

गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, नवम्बर २०१५ ई०

संख्या ११

पूर्ण संख्या १०६८

भगवती तुलसीको नमस्कार

तुलसीं प्रणमेद्यस्तु भक्त्या मानवसत्तमः। स याति विष्णुसायुज्यं न पुनः प्रपतेत्क्षितौ॥
तुलसीकाननं यत्र तत्र साक्षाज्जनार्दनः। लक्ष्मीसरस्वतीयुक्तो मोदते मुनिसत्तम॥
त्रैलोक्यनिस्तारपरायणे शिवे यथैव गङ्गा सरितां वरा स्वयम्।
तथैव लोकत्रयपावनार्थं द्रुमेषु साक्षात्तुलसीस्वरूपिणी॥
त्वं ब्रह्मविष्णुप्रमुखैः सुरोत्तमैः पुरार्चिता विश्वपवित्रहेतवे।
जाता धरण्यां जगदेकवन्द्ये नमामि भक्त्या तुलसि प्रसीद॥

[श्रीमहादेवजी नारदजीसे कहते हैं—] जो मानवश्रेष्ठ भक्तिपूर्वक तुलसीको प्रणाम करता है, वह भगवान् विष्णुके सायुज्यको प्राप्त करता है और पुनः पृथ्वीपर उसका जन्म नहीं होता। मुनिश्रेष्ठ! जहाँ तुलसीकानन है, वहाँ लक्ष्मी और सरस्वतीके साथ साक्षात् भगवान् जनार्दन प्रसन्नतापूर्वक विराजमान रहते हैं। ××× तीनों लोकोंके उद्धारमें तत्पर शिवे! जिस तरह साक्षात् गंगा सभी नदियोंमें श्रेष्ठ हैं, उसी तरह लोकोंको पवित्र करनेके लिये वृक्षोंमें साक्षात् तुलसीस्वरूपिणी (आप) श्रेष्ठ हैं। तुलसी! आप ब्रह्मा, विष्णु आदि प्रमुख देवताओंके द्वारा पूर्वमें पूजित हुई हैं, आप विश्वको पवित्र करनेके हेतु पृथ्वीपर उत्पन्न हुई हैं, विश्वकी एकमात्र वन्दनीया आपको मैं नमस्कार करता हूँ, आप प्रसन्न हों। [महाभागवतपुराण]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, नवम्बर २०१५ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹ २००
सजिल्द ₹ २२०

पंचवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹ १०००
सजिल्द ₹ ११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क } वार्षिक US$ 45 (₹ 2700) पंचवर्षीय US$ 225 (₹ 13500) { Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**
आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**राधेश्याम खेमका,** सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **www.gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **(0551) 2334721**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-www.gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

कल्याण

संसारके जितने भी भोग हैं—छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े, सब-के-सब अनित्य हैं—सदा रहनेवाले नहीं हैं। दूसरे, सब-के-सब भोग अपूर्ण हैं। कोई भी भोग ऐसा नहीं है, जिसे प्राप्त करके आप यह अनुभव कर सकें कि अब और कुछ नहीं चाहिये। तीसरे, भोग जितने अधिक होंगे, उतनी ही भोगोंकी चाह अधिक बढ़ेगी और जितनी बड़ी चाहरूपी आग होगी, उतने अधिक ईंधनकी आवश्यकता होगी—यह नियम है। अतएव जिसके पास जितना बड़ा भोग-समुदाय है, उसकी भोगोंकी भूख उतनी ही बड़ी है और जितनी बड़ी भोगोंकी भूख है, उतना ही बड़ा उसका दु:ख है। आग जितनी बड़ी होती है, उसकी उतनी ही बड़ी गर्मी होती है तथा वह उतनी दूरतक ताप पहुँचाती है। जितना ही भोग-बाहुल्य है, उतना ही दु:ख-बाहुल्य है, ताप-बाहुल्य है और उस दु:ख तथा तापका प्रभाव उतनी ही दूरतक प्रसारित होता रहता है।

भोगोंकी प्राप्ति प्रारब्धाधीन है। हमलोग मिथ्या प्रयास करते हैं—झूठ बोलते हैं, छल करते हैं, कपट करते हैं; आपसमें लड़ते हैं—पड़ोसी पड़ोसीसे, भाई भाईसे, पिता पुत्रसे। यह सब क्यों होता है? हमने मनमें ऐसा मान रखा है कि हम 'अपना' प्रयास करके अधिक पा लेंगे अथवा हमारी कोई हानि हो रही है तो उससे तो अपनेको बचा लेंगे, किंतु हमारी यह धारणा भ्रामक है। प्रारब्ध प्रायश्चित्तसे, भगवच्छरणागतिसे अथवा ज्ञानसे ही जल सकता है; किंतु जबतक वह जलता नहीं, तबतक प्रारब्धका भोग करना ही पड़ेगा—

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।'

हमारी कोई हानि हो रही है तो हमारे मनमें विचार उत्पन्न होता है कि अमुक व्यक्तिसे हानि हो रही है, किंतु प्रथम तो ऐसी मान्यतामें हमारी भूल हो सकती है; क्योंकि अमुक व्यक्तिका हमारी हानिमें तनिक भी हाथ नहीं हो सकता है। दूसरे, यदि वह व्यक्ति हानि करनेका प्रयत्न कर भी रहा है तो वह हमारी हानि कभी कर ही नहीं सकता, यदि हमारा प्रारब्ध हानिका नहीं है। हमारी हानि तभी होनी सम्भव है, जब हमारा प्रारब्ध वैसा है। ऐसी अवस्थामें जो हमारी हानि करनेका, हमारा बुरा करनेका, हमें कष्ट पहुँचानेका मनोरथ करता है, प्रयत्न करता है, वह नया पापकर्म कर रहा है और उसके फलस्वरूप उसे दु:ख भोगना पड़ेगा। साथ ही हमारा प्रारब्ध हुए बिना वह हमें हानि पहुँचा नहीं सकता। अतएव जब हमें कोई हानि पहुँचती है और हानि पहुँचानेमें हमको दूसरा व्यक्ति कारण दीखता है, तब वहीं हमें सोचना चाहिये कि 'वह बेचारा व्यक्ति दयाका पात्र है, वह अपने-आप अपनी बुराई कर रहा है, भगवान् उसे क्षमा करें, उसपर कृपा करें, उसको सद्बुद्धि दें, हमारा तो जो कुछ होना होगा, वह प्रारब्धके अनुसार होगा ही, वह उसमें निमित्त न बने तब भी होगा, किंतु उसमें निमित्त बनकर वह नया पाप कर रहा है।'

जो नियम दूसरोंके लिये है, वही हमारे ऊपर भी लागू होता है। अतएव हमलोग भोगोंकी प्राप्तिके लिये जो नये-नये पाप करते हैं—झूठ बोलते हैं, छल करते हैं, कपट करते हैं, हिंसा करते हैं, चोरी करते हैं, दंगा करते हैं—ये सब पाप तो हमारे पल्ले बँधते जाते हैं और हमारा लाभ उतना ही होता है, जितना होना अवश्यम्भावी है। अतएव कर्मके इस सिद्धान्तको समझकर हमें निश्चिन्त रहना चाहिये; कभी भी छल, कपट, असत्य-भाषण आदिका आश्रय नहीं ग्रहण करना चाहिये। जो लोग छल-कपट आदिका आश्रय ग्रहण करते हैं, उन्हें दयाका पात्र मानकर उनके प्रति सद्भाव बनाना चाहिये तथा भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये कि वे उन्हें क्षमा करें, उन्हें निर्मल बुद्धि प्रदान करें।

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

गोपालका गोप्रेम

भगवान्‌के अवतारके अनेक उद्देश्योंमें गायोंकी पूजा एवं संरक्षण भी एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है; क्योंकि गायोंके अन्दर सभी देवताओंका निवास है। गाय सर्वदेवमयी है। गायकी पूजासे सभी देवताओंकी पूजा हो जाती है तथा उनका आशीर्वाद भी प्राप्त हो जाता है। इस संसारमें गायका माँ-जैसा ही स्थान है; क्योंकि वह माँकी तरह ही वात्सल्यकी साकार मूर्ति है। इसीलिये गोपालने अपना बचपन गो-पूजासे आरम्भकर अपना गोपाल नाम सार्थक किया।

गोपालको गायें अत्यन्त प्रिय थीं। श्रीकृष्णचन्द्र लगभग तीन वर्षके हो गये थे, अब वे यह हठ करने लगे कि दूसरे गोपोंके समान गायें चराने जाया करेंगे। अन्तमें उनके हठसे विवश होकर व्रजराज श्रीनन्दबाबाने उनको ग्वाल-बालकोंके साथ छोटे बछड़े चरानेकी आज्ञा दे दी। नन्दगाँवके पासके वनमें गोपकुमारोंके साथ श्यामसुन्दर बछड़े चराने जाने लगे। वनमें अपने सखाओंके साथ वे बछड़े चराते हुए अनेक प्रकारके खेल खेलते थे। नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने अपने ग्रन्थ पद-रत्नाकरमें भगवान् श्रीकृष्णके गोचारणहेतु जानेके दृश्यका इस प्रकार वर्णन किया है—

कन्हैया गाय चरावन जात।
लाल काछिनी, कटि कल किंकिनि, पग नूपुर झननात॥
मोर-मुकुट सिर, कानन कुंडल, गल मुक्तामनि-माल।
बाजूबंद विचित्र, सुकंकन, तिलक सुसोभित भाल॥
पीत बसन दामिनि-दुति-निंदित, घूँघरवारे केस।
स्वर्न लकुटिया कमल लिये कर-कमलन्हि अतिहि सुबेस॥
धौरी, धूमरि, कारी, पीरी, सुंदर कबरी धेनु।
सखा सुबल-श्रीदाम-संग कटि राजत सींगा-बेनु॥

दिनभर गाय चरानेके बाद सायंकाल गोधूलि वेलामें वे गायोंको वापस गोष्ठकी ओर लेकर आते थे। व्रजकी सभी गोपियोंका गोपालकृष्णके प्रति बड़ा ही स्नेहभाव था। जबतक वे गोकुलमें रहते थे तो वे मन-ही-मन चाहती थीं कि मोहन उनके घर भी आयें और दही-माखन खा जाया करें। भक्तवत्सल श्रीकृष्ण उनकी इच्छा जानकर गोपबालकोंका दल साथ लेकर उनमेंसे किसीके घरमें चुपचाप घुस जाते थे। छींकेपर रखे दही-माखनके बर्तन लकुटिया मारकर फोड़ देते। माखन, दही, दूध सब स्वयं खाते, गोपबालकों और बन्दरोंतकको खिलाते और भूमिपर फैला जाते। गोपियाँ मैया यशोदाके पास उलाहना देने जाया करती थीं। उलाहना देनेके बहाने भी वे केवल श्रीकृष्णचन्द्रका सुन्दर मुख देखने ही जाती थीं; परंतु जबसे गोचारणहेतु वे वृन्दावन जाने लगे तो गोपियोंको दिनभर उनका दर्शन नहीं होता था, अतः वे सायंकाल उनकी प्रतीक्षा करती रहती थीं और जैसे ही वे धूलि-धूसरित मुरली बजाते गायोंको लिये लौटते तो गोपियोंके मुखकमल खिल जाते और वे एक-दूसरेसे कहने लगतीं—'सखी, देखो! नन्दनन्दन आ रहे हैं। वृन्दावनसे लौटते हुए गायोंके झुण्डमें ओष्ठपर वंशी धरे वे गा रहे हैं। मेघके समान श्याम शरीर है, कमलदलके समान नेत्र हैं, प्रत्येक अंग अत्यन्त शोभा दे रहा है। 'काली! लाल! धौरी! धूमरी! (कृष्णा! गौरी! कपिला! ध्रूमा)' इस प्रकार नाम ले-लेकर गायोंको बुलाते हैं। सब गोपबालक साथमें शोभित हैं, मिलकर (एक स्वर एवं लयसे) तालियाँ और पत्तोंके बाजे बजाते हैं।'

सूरदासजी इस दृश्यका वर्णन करते हुए कहते हैं कि इनका तो मुख देखनेसे ही आनन्द होता है, ये गोपियोंके प्रेमको बढ़ा रहे हैं—

देखौ री नँद-नंदन आवत।
बृंदाबन तैं धेनु-बृंद मैं बेनु अधर धरें गावत॥
तन घनस्याम कमल-दल-लोचन अंग-अंग छबि पावत।
कारी-गोरी, धौरी-धूमरि लै-लै नाम बुलावत॥
बाल गोपाल संग सब सोभित मिलि कर-पत्र बजावत।
सूरदास मुख निरखतहीं सुख गोपी-प्रेम बढ़ावत॥

(सूरसागर)

स्वधर्मे निधनं श्रेयः

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

आजकल ऐसी बात कही जाती है कि वर्णविभाग उच्च वर्णके अधिकारारूढ़ लोगोंकी स्वार्थपूर्ण रचना है, परंतु ध्यान देनेपर पता लगता है कि समाज-शरीरकी सुव्यवस्थाके लिये वर्णधर्म बहुत ही आवश्यक है और यह मनुष्यकी रचना है भी नहीं। वर्णधर्म भगवान्‌के द्वारा रचित है। स्वयं भगवान्‌ने कहा है—'**चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।**' (४।१३)

'गुण और कर्मोंके विभागसे चारों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) मेरे ही द्वारा रचे हुए हैं। भारतके दिव्य दृष्टि-प्राप्त त्रिकालज्ञ महर्षियोंने भगवान्‌के द्वारा निर्मित इस सत्यको प्रत्यक्षरूपसे प्राप्त किया और इसी सत्यपर समाजका निर्माण करके उसे सुव्यवस्थित, शान्ति, शीलमय, सुखी, कर्मप्रवण, स्वार्थदृष्टिशून्य, कल्याणप्रद और सुरक्षित बना दिया। सामाजिक सुव्यवस्थाके लिये मनुष्योंके चार विभागकी सभी देशों और सभी कालोंमें आवश्यकता हुई है और सभीमें चार विभाग रहे और रहते भी हैं, परंतु इस ऋषियोंके देशमें वे जिस सुव्यवस्थितरूपसे रहे, वैसे कहीं नहीं रहे।

समाजमें धर्मकी स्थापना और रक्षाके लिये तथा समाज-जीवनको सुखी बनाये रखनेके लिये, जहाँ समाजकी जीवन-पद्धतिमें कोई बाधा उपस्थित हो, वहाँ प्रयत्नके द्वारा उस बाधाको दूर करनेके लिये, कर्मप्रवाहके भँवरको मिटानेके लिये, उलझनोंको सुलझानेके लिये और धर्मसंकट उपस्थित होनेपर समुचित व्यवस्था देनेके लिये परिष्कृत और निर्मल मस्तिष्ककी आवश्यकता है। धर्मकी और धर्ममें स्थित समाजकी भौतिक आक्रमणोंसे रक्षा करनेके लिये बाहुबलकी आवश्यकता है। मस्तिष्क और बाहुका यथायोग्य रीतिसे पोषण करनेके लिये धनकी और अन्नकी आवश्यकता है और उपर्युक्त कर्मोंको यथायोग्य सम्पन्न करानेके लिये शारीरिक परिश्रमकी आवश्यकता है।

इसीलिये समाज—शरीरका मस्तिष्क ब्राह्मण है, बाहु क्षत्रिय है, ऊरु वैश्य है और चरण शूद्र है। चारों एक ही समाज-शरीरके चार आवश्यक अंग हैं और एक-दूसरेकी सहायतापर सुरक्षित और जीवित हैं। घृणा या अपमानकी तो बात ही क्या है, इनमेंसे किसीकी तनिक भी अवहेलना नहीं की जा सकती। न इनमें नीच-ऊँचकी ही कल्पना है। अपने-अपने स्थान और कार्यके अनुसार चारों ही बड़े हैं। ब्राह्मण ज्ञानबलसे, क्षत्रिय बाहुबलसे, वैश्य धनबलसे और शूद्र जनबल या श्रमबलसे बड़ा है और चारोंकी पूर्ण उपयोगिता है। इनकी उत्पत्ति भी एक ही भगवान्‌के शरीरसे हुई है—ब्राह्मणकी उत्पत्ति भगवान्‌के श्रीमुखसे, क्षत्रियकी बाहुसे, वैश्यकी ऊरुसे और शूद्रकी चरणोंसे हुई है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

(ऋग्वेद सं० १०।९०।१२)

परंतु इनका यह अपना-अपना बल न तो स्वार्थसिद्धिके लिये है और न किसी दूसरेको दबाकर स्वयं ऊँचा बननेके लिये ही है। समाज-शरीरके आवश्यक अंगोंके रूपमें इनका योग्यतानुसार कर्मविभाग है और यह है केवल धर्मके पालने-पलवानेके लिये ही। ऊँच-नीचका भाव न होकर यथायोग्य कर्मविभाग होनेके कारण ही चारों वर्णोंमें एक शक्ति-सामंजस्य रहता है। कोई भी किसीकी न अवहेलना कर सकता है, न किसीके न्याय्य अधिकारपर आघात कर सकता है। इस कर्मविभाग और कर्माधिकारके सुदृढ़ आधारपर रचित यह वर्णधर्म ऐसा सुव्यवस्थित है कि इसमें शक्ति-सामंजस्य अपने-आप ही रहता है। स्वयं भगवान्‌ने और धर्मनिर्माता ऋषियोंने प्रत्येक वर्णके कर्मोंका अलग-अलग स्पष्ट निर्देश करके तो सबको अपने-अपने धर्मका निर्विघ्न पालन करनेके लिये और भी सुविधा कर दी है और स्वकर्मका पूरा पालन होनेसे शक्ति-सामंजस्यमें कभी बाधा आ ही नहीं सकती।

यूरोप आदि देशोंमें स्वाभाविक ही मनुष्य-समाजके चार विभाग रहनेपर भी निर्दिष्ट नियम न होनेके कारण

शक्ति-सामंजस्य नहीं है। इसीसे कभी ज्ञानबल सैनिक बलको दबाता है और कभी जनबल धनबलको परास्त करता है। भारतीय वर्णविभागमें ऐसा न होकर सबके लिये पृथक्-पृथक् कर्म निर्दिष्ट हैं।

ऋषिसेवित वर्णधर्ममें ब्राह्मणका पद सबसे ऊँचा है, वह समाजके धर्मका निर्माता है, उसीकी बनायी हुई विधिको सब मानते हैं। वह सबका गुरु और पथप्रदर्शक है; परंतु वह धन-संग्रह नहीं करता, न दण्ड ही देता है, न भोग-विलासमें ही रुचि रखता है। स्वार्थ तो मानो उसके जीवनमें है ही नहीं। धनैश्वर्य और पद-गौरवको धूलके समान समझकर वह फल-मूलोंपर निर्वाह करता हुआ सपरिवार शहरसे दूर वनमें रहता है। दिन-रात तपस्या, धर्मसाधन और ज्ञानार्जनमें लगा रहता है और अपने शम, दम, तितिक्षा, क्षमा आदिसे समन्वित महान् तपोबलके प्रभावसे दुर्लभ ज्ञाननेत्र प्राप्त करता है और उस ज्ञानकी दिव्य ज्योतिसे सत्यका दर्शनकर उस सत्यको बिना किसी स्वार्थके सदाचारपरायण, साधु-स्वभाव पुरुषोंके द्वारा समाजमें वितरण कर देता है। बदलेमें कुछ भी चाहता नहीं। समाज अपनी इच्छासे जो कुछ दे देता है या भिक्षासे जो कुछ मिल जाता है, उसीपर वह बड़ी सादगीसे अपनी जीवनयात्रा चलाता है। उसके जीवनका यही धर्ममय आदर्श है।

क्षत्रिय सबपर शासन करता है। अपराधीको दण्ड और सदाचारीको पुरस्कार देता है। दण्डबलसे दुष्टोंको सिर नहीं उठाने देता और धर्मकी तथा समाजकी दुराचारियों, चोरों, डाकुओं और शत्रुओंसे रक्षा करता है। क्षत्रिय दण्ड देता है, परंतु कानूनकी रचना स्वयं नहीं करता। ब्राह्मणके बनाये हुए कानूनके अनुसार ही वह आचरण करता है। ब्राह्मणरचित कानूनके अनुसार ही वह प्रजासे कर वसूल करता है और उसी कानूनके अनुसार प्रजाहितके लिये व्यवस्थापूर्वक उसे व्यय कर देता है। कानूनकी रचना ब्राह्मण करता है और धनका भण्डार वैश्यके पास है। क्षत्रिय तो केवल विधिके अनुसार व्यवस्थापक और संरक्षकमात्र है।

धनका मूल वाणिज्य, पशु और अन्न—सब वैश्यके हाथमें है। वैश्य धन उपार्जन करता है और उसको बढ़ाता है किंतु अपने लिये नहीं। वह ब्राह्मणके ज्ञान और क्षत्रियके बलसे संरक्षित होकर धनको सब वर्णोंके हितमें उसी विधानके अनुसार व्यय करता है। न शासनपर उसका कोई अधिकार है और न उसे उसकी आवश्यकता ही है; क्योंकि ब्राह्मण और क्षत्रिय उसके वाणिज्यमें कभी कोई हस्तक्षेप नहीं करते, स्वार्थवश उसका धन कभी नहीं लेते, वरं उसकी रक्षा करते हैं और ज्ञानबल तथा बाहुबलसे ऐसी सुव्यवस्था करते हैं कि जिससे वह अपना व्यापार सुचारुरूपसे निर्विघ्न चला सकता है। इससे उसके मनमें कोई असंतोष नहीं है और वह प्रसन्नताके साथ ब्राह्मण तथा क्षत्रियका प्राधान्य मानकर चलता है और मानना आवश्यक भी समझता है; क्योंकि इसीमें उसका हित है। वह खुशीसे राजाको कर देता है, ब्राह्मणकी सेवा करता है और विधिवत् आदरपूर्वक शूद्रको भरपूर अन्न-वस्त्रादि देता है।

अब रहा शूद्र, शूद्र स्वाभाविक ही जनसंख्यामें अधिक है। शूद्रमें शारीरिक शक्ति प्रबल है, परंतु मानसिक शक्ति कुछ कम है। अतएव शारीरिक श्रम ही उसके हिस्सेमें रखा गया है और समाजके लिये शारीरिक शक्तिकी बड़ी आवश्यकता भी है, परंतु इसकी शारीरिक शक्तिका मूल्य किसीसे कम नहीं है। शूद्रके जनबलके ऊपर ही तीनों वर्णोंकी प्रतिष्ठा है। यही आधार है। पैरके बलपर ही शरीर चलता है। अतएव शूद्रको तीनों वर्ण अपना प्रिय अंग मानते हैं। उसके श्रमके बदलेमें वैश्य प्रचुर धन देता है, क्षत्रिय उसके धन-जनकी रक्षा करता है और ब्राह्मण उसको धर्मका, भगवत्प्राप्तिका मार्ग दिखलाता है। न तो स्वार्थसिद्धिके लिये कोई वर्ण शूद्रकी वृत्ति हरण करता है, न स्वार्थवश उसे कम पारिश्रमिक देता है और न उसे अपनेसे नीचा मानकर किसी प्रकारका दुर्व्यवहार ही करता है। सब यही समझते हैं कि सब अपना-अपना स्वत्व ही पाते हैं, कोई किसीपर उपकार नहीं करता, परंतु सभी एक-दूसरेकी सहायता करते हैं और सब अपनी उन्नतिके साथ उसकी उन्नति करते हैं और उसकी उन्नतिमें अपनी उन्नति और अवनतिमें अपनी

अवनति मानते हैं। ऐसी अवस्थामें जनबलयुक्त शूद्र सन्तुष्ट रहता है, चारोंमें कोई किसीसे ठगा नहीं जाता, कोई किसीसे अपमानित नहीं होता।

एक ही घरके चार भाइयोंकी तरह एक ही घरकी सम्मिलित उन्नतिके लिये चारों भाई प्रसन्नता और योग्यताके अनुसार बाँटे हुए अपने-अपने पृथक्-पृथक् आवश्यक कर्तव्यपालनमें लगे रहते हैं। यों चारों वर्ण परस्पर—ब्राह्मण धर्मस्थापनके द्वारा, क्षत्रिय बाहुबलके द्वारा, वैश्य धनबलके द्वारा और शूद्र शारीरिक श्रमबलके द्वारा एक-दूसरेका हित करते हुए समाजकी शक्ति बढ़ाते हैं। न तो सब एक-सा कर्म करना चाहते हैं और न अलग-अलग कर्म करनेमें कोई ऊँच-नीच-भाव ही मनमें लाते हैं। इसीसे उनका शक्ति-सामंजस्य रहता है और धर्म उत्तरोत्तर बलवान् तथा पुष्ट होता है। यह है वर्णधर्मका स्वरूप।

इस प्रकार गुण और कर्मके विभागसे ही वर्णविभाग बनता है, परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि मनमाने कर्मसे वर्ण बदल जाता है। वर्णका मूल जन्म है और कर्म उसके स्वरूपकी रक्षामें प्रधान कारण है। इस प्रकार जन्म और कर्म दोनों ही वर्णमें आवश्यक हैं। केवल कर्मसे वर्णको माननेवाले वस्तुतः वर्णको मानते ही नहीं। वर्ण यदि कर्मपर ही माना जाय तब तो एक दिनमें एक ही मनुष्यको न मालूम कितनी बार वर्ण बदलना पड़ेगा। फिर तो समाजमें कोई शृंखला या नियम ही नहीं रहेगा। सर्वथा अव्यवस्था फैल जायगी, परंतु भारतीय वर्णधर्ममें ऐसी बात नहीं है। यदि केवल कर्मसे वर्ण माना जाता तो युद्धके समय ब्राह्मणोचित कर्म करनेको तैयार हुए अर्जुनको गीतामें भगवान् क्षत्रियधर्मका उपदेश न करते। मनुष्यके पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार ही उसका विभिन्न वर्णोंमें जन्म हुआ करता है। जिसका जिस वर्णमें जन्म होता है, उसको उसी वर्णके निर्दिष्ट कर्मोंका आचरण करना चाहिये; क्योंकि वही उसका स्वधर्म है और स्वधर्मका पालन करते-करते मर जाना भगवान् श्रीकृष्णने कल्याणकारक बतलाया है। '**स्वधर्मे निधनं श्रेयः।**' साथ ही परधर्मको 'भयावह' भी बतलाया है। यह ठीक ही है; क्योंकि सब वर्णोंके स्वधर्म-पालनसे ही सामाजिक शक्ति-सामंजस्य रहता है और तभी समाज-धर्मकी रक्षा और उन्नति होती है। स्वधर्मका त्याग और परधर्मका ग्रहण व्यक्ति और समाज दोनोंके लिये ही हानिकर है। खेदकी बात है, विभिन्न कारणोंसे आर्यजातिकी यह वर्ण-व्यवस्था इस समय शिथिल हो चली है। आज कोई भी वर्ण अपने धर्मपर आरूढ़ नहीं है, सभी मनमाने आचरण करनेपर उतर रहे हैं और इसका कुफल भी प्रत्यक्ष ही दिखायी दे रहा है।

एकान्त कहीं नहीं

दक्षिण भारतके प्रतिष्ठित संत स्वामी वादिराजजीके अनेकों शिष्य थे; किंतु स्वामीजी अपने अन्त्यज शिष्य कनकदासपर अधिक स्नेह रखते थे। उच्चवर्णके शिष्योंको यह बात खटकती थी। 'कनकदास सच्चा भक्त है' यह गुरुदेवकी बात शिष्योंके हृदयमें बैठती नहीं थी।

स्वामी वादिराजजीने एक दिन अपने सभी शिष्योंको एक-एक केला देकर कहा—'आज एकादशी है। लोगोंके सामने फल खानेसे भी आदर्शके प्रति समाजमें अश्रद्धा बढ़ती है। इसलिये जहाँ कोई न देखे, ऐसे स्थानमें जाकर इसे खा लो।'

थोड़ी देरमें सब शिष्य केले खाकर गुरुके समीप आ गये। केवल कनकदासके हाथमें केला ज्यों-का-त्यों रखा था। गुरुने पूछा—'क्यों कनकदास! तुम्हें कहीं एकान्त नहीं मिला?'

कनकदासने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—'भगवन्! वासुदेव प्रभु तो सर्वत्र हैं, फिर एकान्त कहीं कैसे मिलेगा?'

ब्रह्म और देवताओंका अभिमान

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

ब्रह्मादि देवता भगवान्‌से कहते हैं कि हम सब देवता उद्विग्न होकर जिसे बलि समर्पण करते हैं, वह काल भी आपसे डरता है। प्रभो! हम सब आपकी शरण हैं, जो प्राणी परिपूर्णकाम, आत्मस्वरूपलाभमें सदा प्रशान्त रहनेवाले आपको छोड़कर किसी दूसरेका सहारा लेते हैं, वे श्वपुच्छके सहारे समुद्रको पार करना चाहते हैं—

अविस्मितं तं परिपूर्णकामं
स्वेनैव लाभेन समं प्रशान्तम्।
विनोपसर्पत्यपरं हि बालिशः
श्वलाङ्गुलेनातितितर्ति सिन्धुम्॥

(श्रीमद्भा० ६।९।२२)

लोकपालोंके साथ सभी लोक जिसके वशमें वैसे ही रहते हैं, जैसे सूत्रबद्ध पक्षी जालिकके वशमें रहते हैं, वह भगवान् काल ही जय-पराजयका कारण होता है। यह वृत्रासुरकी इन्द्रके प्रति उक्ति है—'**लोकाः सपाला यस्येमे श्वसन्ति विवशा वशे। द्विजा इव शिचा बद्धाः स काल इह कारणम्॥**' (श्रीमद्भा० ६।१२।८) ओज, सह, बल, प्राण, अमृत और मृत्यु—सबका हेतु भगवान् ही है। उसे न जानकर ही प्राणी अपनेको जड मानता है। '**ओजः सहो बलं प्राणममृतं मृत्युमेव च। तमज्ञाय जनो हेतुमात्मानं मन्यते जडम्॥**' (श्रीमद्भा० ६।१२।९) जैसे कठपुतलियाँ और यन्त्रका मृग पराधीन होते हैं, वैसे ही सब प्राणी परमेश्वरके पराधीन हैं—

यथा दारुमयी नारी यथा यन्त्रमयो मृगः।
एवं भूतानि मघवन्नीशतन्त्राणि विद्धि भोः॥

(श्रीमद्भा० ६।१२।१०)

पुरुष, प्रकृति, महान्, तन्मात्रा आदि मिलकर भी जिसके बिना सृष्ट्यादि कार्य नहीं कर सके, फिर उसके बिना कौन क्या कर सकता है? अविद्वान् प्राणी ही अपनेको स्वतन्त्र ईश्वर मान बैठता है। वस्तुतः भगवान् किन्हीं भूतोंद्वारा किन्हींका पालन करते हैं, किन्हींसे किन्हींका संहार करते हैं। आयु, श्री, कीर्ति, ऐश्वर्य तथा विविध कामनाओंकी पूर्ति यथाकाल वैसे ही आते हैं, जैसे अकीर्ति, दारिद्र्य आदि न चाहनेपर भी आते हैं—

पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमात्मा भूतेन्द्रियाशयाः।
शक्नुवन्त्यस्य सर्गादौ न विना यदनुग्रहात्॥
अविद्वानेवमात्मानं मन्यतेऽनीशमीश्वरम्।
भूतैः सृजति भूतानि ग्रसते तानि तैः स्वयम्॥
आयुः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यमाशिषः पुरुषस्य याः।
भवन्त्येव हि तत्काले यथानिच्छोर्विपर्ययाः॥

(श्रीमद्भा० ६।१२।११—१३)

जो सत्त्व, रज, तम तथा प्रकृतिके साक्षी आत्माको जानता है, वह बद्ध नहीं होता—

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः।
तत्र साक्षिणमात्मानं यो वेद न स बध्यते॥

(श्रीमद्भा० ६।१२।१५)

इसी तरह सभी शास्त्रोंका सिद्धान्त है कि 'मैं कर्ता हूँ' इत्यादि अभिमान सर्वथा मिथ्या है। जब सभी वस्तुएँ भगवान्‌के हाथकी हैं और उन्हींके अनुग्रहसे प्राप्त होती हैं, फिर अभिमान और शोक-मोहको स्थान कहाँ रह जाता है, फिर भी भगवान्‌की माया प्रबल है, वह विचारवानोंको भी मोहित कर लेती है। जानते-सुनते हुए भी प्राणीकी आयु, कीर्ति, ऐश्वर्य आदिमें अहंकार-ममकार उत्पन्न होता है। तत्त्वदर्शी तीव्र भगवदाराधनको छोड़कर विषयमें आसक्त हो जाते हैं। देवता लोग ब्रह्मात्मज्ञानी थे, परंतु उन्हें भी व्यामोहवश गर्व हुआ। असुरोंपर विजय प्राप्त करते ही वे ब्रह्मात्मज्ञानको भूलकर व्यष्टि अभिमान करने लग गये। वस्तु-स्थिति यह थी कि जैसे वह्निके सान्निध्यमात्रसे शलभोंका दाह होता है, वैसे ही ब्रह्मात्मरूप होनेसे देवताओंके सान्निध्यसे असुरोंका दाह हुआ—

तेषां ब्रह्मात्मरूपाणां सान्निध्यादसुराः सदा।
क्षयं जग्मुर्यथा वह्नेः सान्निध्याच्छलभा इमे॥

(आत्मपु०)

यद्यपि सामान्य रूपसे ब्रह्म सबका साधक ही है, तथापि विशिष्ट उपाधियोंपर प्रकट होकर वह दाहक भी हो जाता है—जैसे सूर्यकान्तपर प्रकट सौरालोक तूलका दाहक होता है। जैसे अग्निसे तप्त लौहपिण्ड शुष्क, आर्द्र सब तरहके काष्ठको जला देता है, वैसे ही ब्रह्माग्निदीप्त देवताओंने असुरोंको जला दिया—

अयः पिण्डो यथा तप्तः शुष्कमार्द्रञ्च निर्दहेत्।
एवं ब्रह्माग्निसन्दीप्ता देहुस्तानसुरान् बहून्॥
अयः पिण्डो यथा वह्निसामर्थ्याद्दाहको भवेत्।
ब्रह्मसामर्थ्यतो देवा देहुस्तानसुरानपि॥

ब्रह्म यद्यपि सर्वत्र समान है, उसमें पक्षपातका आरोप वास्तव नहीं है तथापि जैसे सामुद्रलक्षण बलसे प्राणीको निधिवृद्धि होती है, वैसे ही ब्रह्मबलसे देवताओंको विजय प्राप्त हुई—

सामुद्रलक्षणबलाद्यथा वृद्धिर्निधेर्भवेत्।
एवं ब्रह्मबलात्तेषां सुराणां विजयोऽभवत्॥

किंवा जैसे भास्कर सर्वगत होते हुए भी सूर्यकान्तपर विशेषरूपसे अभिमान करते हैं, वैसे ही सर्वगत ब्रह्म भी विशेषरूपसे देवजातिसे अभिमान करते हैं, इसलिये देव तेजस्वी हो गये—

यथा सर्वगतोऽप्येष भगवान् भास्करः सदा।
अभिमानं विशेषेण कुरुते सूर्यकान्तके॥
एवं सर्वगतं ब्रह्म देवजातौ विशेषतः।
अकरोदभिमानं तद्देवास्तेजस्विनस्ततः॥

महात्माओंने इसका समाधान अनेक प्रकारसे किया है। तुलसीदासजी कहते हैं—

जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पूनु गुन दोषू॥
तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा॥

गीताकी भी यही सम्मति है—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

गर्व भगवान्‌से अतिरिक्त कोई तात्त्विक पृथक् वस्तु ही नहीं है, अपने आप ही भगवान् अनन्तरूपमें प्रकट होकर '**इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते**' के सिद्धान्तानुसार लीला करते हैं, तब फिर सर्वचोद्य (सर्वप्रेर्य) परिहार बेकार हो जाते हैं। इसलिये भगवत्तत्त्वज्ञ एकात्माके आघात-प्रत्याघातोंको दाँतोंद्वारा जिह्वाके आघात-जैसा मानकर समाधान करते हैं—'**जिह्वा क्वचित् सन्दशति स्वदद्भिस्तद्वेदनायां कतमाय कुप्येत?**' जैसे सूत्रधार काष्ठ पुत्तलिकाओंका संचालन करता हुआ लीलया ही किसीको जय देता है, वैसे ही ब्रह्मने देवताओंको जय दिया—

सूत्रधारो यथा सूत्रः पुत्रिकाश्चालयन् भृशम्।
जयं ददाति कासाञ्चिदेवं ब्रह्म सुरद्रुहाम्॥
(आ०पु०)

अनेक खिलौनोंसे खेलता हुआ बालक किसीमें अभिमान कर लेता है, इसी तरह ब्रह्मने देवताओंमें अभिमान कर लिया—

बालकोऽथ यथा क्रीडन् केषुचित्त्वभिमानकृत्।
एवं ब्रह्मादिसंसारे देवेष्वेवाभिमानकृत्॥
(आ०पु०)

इस तरह ब्रह्मकी कृपासे विजय प्राप्त हुई। जब प्राणिमात्रका भी वही आश्रय है और वही सब बलवानोंका बल, शक्तियोंका आश्रय है, सब उसीके यन्त्र हैं, फिर किसीको किंचित् भी अभिमान और अपनेमें उत्कर्ष-कल्पना, अन्यमें अपकर्ष-कल्पनाका अवकाश कहाँ? तथापि देवता भूले। जैसे प्राणी विपत्तिमें देवताओंको पुकारते हैं, उनकी कृपासे विपत्तिको पार करते हैं और कृतार्थ होकर उन देवताओंको भूल जाते हैं, वैसे ही देवता भी ब्रह्मको भूल गये। अपनेको ही विजयी मानने लगे, जैसे कृतघ्न जुआरी अपने उपकारकको भूल जाता है, वैसी ही दशा देवताओंकी भी हुई—

रजसादिष्टहृदयाः पश्चाद्विस्मृतिमागताः।
विजयस्यात्मनो हेतुं ब्रह्म ते न प्रपेदिरे॥
कृतघ्ना इव दुर्द्यूतसेविनः कितवा इव।
स्वोपकारस्य कर्तारं कृतार्था विस्मृतिर्गताः॥

ऐश्वर्यमदमत्तानां क्षुधितानां च कामिनाम्। अहङ्कारविमूढानां विवेको नैव जायते॥

जो ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हैं, जो भूखसे पीड़ित हैं, जो कामी हैं तथा जो अहंकारसे मूढ हो रहे हैं, ऐसे मनुष्योंको विवेक नहीं होता। [नारदपुराण]

साधन अनेक साध्य एक

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

साधन अनेक साध्य एक—यह सिद्धान्त है। भला, सबको एक रस्सीमें बाँध करके कहीं ले जाया जा सकता है! विभिन्न रुचिके लोग हैं।

कल एक भाईने कहा कि शीतला और दुर्गा तो एक ही हैं। शीतला और दुर्गा हैं तो एक, इसमें कोई सन्देह नहीं, पर वे गधेपर चढ़ती हैं और ये सिंहपर चढ़ती हैं। एक ही के दो रूप हैं। ये हाथमें सूप और झाड़ू लेती हैं, सफाई करनेवाली हैं। वे हाथमें शस्त्र लेती हैं। सफाई करनेवाली शीतलाको जहाँ मनाना हो, वहाँ उनके हाथमें झाड़ू और सूप देना पड़ेगा; टोकरी-झाड़ू लिये बिना सफाई कैसे करेंगी? और गधे बिना कूड़ा कौन ढोयेगा? वहाँ उसकी जरूरत है, पर जहाँ किसी दैत्यके सामने जाना हो, वहाँ माँ दुर्गाको सिंहवाहिनीके रूपमें जाना होगा और जहाँ किसी रक्तबीजका रक्त पीना हो तो वहाँ चामुण्डाके रूपमें आयेंगी। चामुण्डामें, शीतलामें, दुर्गामें, लक्ष्मीमें, सरस्वतीमें, महाकालीमें, तारामें अन्तर नहीं; परंतु महज अन्तर है कि अपने-अपने स्थानमें अलग-अलग साधनाकी आवश्यकता होती है। हर आदमीकी साधना अलग होती है, बच्चेकी साधना—पढ़ाई अलग और परास्नातक (एम० ए०) क्लासवालेकी अलग, पढ़ना दोनोंको है और इसी प्रकारसे परास्नातक क्लासमें भी किसीने साइंस लिया है, किसीने कॉमर्स लिया है, कोई कानूनका विद्यार्थी है; सभी परास्नातक क्लासके हैं, पर सबकी रुचि अलग-अलग, सबकी शिक्षा अलग-अलग और शिक्षाके बाद परास्नातक डिग्रीमें भी उनके अलग-अलग वर्ग होते हैं। यह विज्ञानका है, यह कॉमर्सका है—सब अलग-अलग होते हैं। इसलिये अलग-अलग होना कोई बुरी चीज नहीं है और उसकी आवश्यकता है, उसमें अगर गोलमटोल कर दे तो न इसका रहेगा और न उसका रहेगा।

यह जो बहुत सुनना और बहुत कहना है—यह साधकोंका काम नहीं है। यह तो सुननेके शौकवालोंका और कहनेके शौकवालोंका काम है। अच्छा शौक है, इसलिये अच्छी बात है, बुरी चीज नहीं। इससे लाभ होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। भगवान्‌का गुणानुवाद है। अच्छी बातें कैसे भी कानोंमें जायँ, ये लाभदायिनी हैं, जरा भी सन्देह नहीं। इसका खण्डन जरा भी नहीं, जितना प्रचार उतना अच्छा; तथापि जो एकान्त साधक है, उसके लिये बहुत सुननेकी, बहुत जाननेकी आवश्यकता नहीं। थोड़ा जाने, थोड़ा सुने और जो जाने, जो सुने, उसको जीवनमें उतारना शुरू कर दे, यह साधकका काम है। आज एक बात सुनी, कल दूसरी सुनी; आज एकका खण्डन किया; कल दूसरीका मण्डन किया; इसमें उसका जीवन चला जाता है। पक्षपात तो न करे, पर अपनी चीजको अपनी ही माने। अरे! भई दूसरेका पति बड़ा सुन्दर, बड़ा अच्छा, बड़ा गुणवान्, पर पतिव्रताके लिये तो अपना वह काला-कलूटा जैसा भी है, पति अगर गुणहीन भी है तो वही उसका सर्वस्व है, वह अन्यकी ओर ताकना भी नहीं चाहती। '**स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः**' अच्छा भी परधर्म जो है, वह ग्राह्य नहीं, परधर्मका अर्थ यहाँ पक्षपात नहीं, खण्डन नहीं, किसीके प्रति घृणा नहीं, नफरत नहीं, किसीको बुरा और नीचा मानना नहीं, सबके प्रति सम्मान रहे।

हमारे ऑफिसमें ईसाकी तस्वीरें टँगी रहती हैं, हमें ईसा बड़े प्रिय हैं और हम वैसे कूपमण्डूक सनातनी माने जाते हैं। एक सज्जन आये सनातनधर्मावलम्बी, सनातनी तो हम भी अपनेको मानते हैं चाहे हम गिरे हुए सनातनी हों—यह दूसरी चीज है। उन्होंने कहा कि यह आपने ईसाकी तस्वीर क्यों लगा रखी है यहाँपर? हमने कहा—हमें अच्छी लगती है, अच्छी लगती है तो लगा रखी है। बोले—यह धर्म नहीं, हमने कहा—अधर्म सही, धर्मकी बात हम आग्रह करें तब न हमारा धर्म। हमको

ईसा अच्छा लगता है। ईसाका त्याग हमें अच्छा लगता है, ईसाकी शान्ति हमें अच्छी लगती है, ईसाका धर्म भी हमारे ही धर्म हिन्दू-धर्मका ही एक अंशमात्र है—यह हम मानते हैं, पर ईसासे हमारा विरोध क्यों हो? बुद्धका नाम लेनेमें हमको डर क्यों लगे? हाँ, क्यों डर लगे? कुरानकी अच्छी-अच्छी बात भी हम बतायें तो हम भयभीत क्यों हो जायँ? अरे! सारे भगवान्, एक ही भगवान्का तो सब बसाया है ना! हम किसी चीजको अच्छी न समझें, उसको न मानें। हमारे यहाँ भी अगर कोई खास आग्रह किसी ऐसी बातका हो कि जिसको हम पाप समझते हों, हमारी बुद्धि पाप कहती हो, दूसरे शास्त्र पाप कहते हों, हमारे लिये आवश्यक नहीं कि उसको हम करते ही रहें; इसलिये कि वह हमारी पोथीमें लिखी है, इसलिये करनी है। शास्त्रको मानना है, शास्त्रके अनुसार चलना है, पर शास्त्रके साथ-साथ मनु महाराजके कथनानुसार दो बात और होनी चाहिये। सत्पुरुषोंके द्वारा आचरित हो और अपने मनको भी मान्य हो। इसके बिना केवल शास्त्रपर कार्य नहीं चलता। इसलिये यह बुद्धिमानीके साथ, विचारके साथ आवश्यक है कि जिस मार्गमें हम लगें, जिस साधनमें हम लगें; उसी साधनके सजातीय विषयोंका हम अनुशीलन करें तो हमारे साधनमें प्रगति होगी।

दो चीजें साधकके लिये बड़ी आवश्यक हैं, इनके बिना काम नहीं चलता—एक तो दूसरेका खण्डन-मण्डन न करे और किसी दूसरे मतका श्रवण-मनन न करे तथा दूसरा अपने इष्ट और अपने साधनमें कभी हीनबुद्धि न करे।

जहाँ अपने साधनमें अपने इष्टमें हीनबुद्धि आयी, वहीं साधना ढीली हो जायगी। तत्काल ढीली हो जायगी, बोले ये हम करते तो हैं, पर ये शायद ठीक न हो। जहाँ शायद आया वहीं जीवन हिल गया, शायद आते ही जीवनका जो एक अचल और अटल भाव है, वह तत्काल हिल जाता है और वह हिला कि साधना नष्ट होने लगी। इसीलिये बड़ी आवश्यक बात है—अपने साधनपर अटल रहे और दूसरेके साधनकी ओर न ताके, न उसे बुरा बताये और न उसे किसी प्रकारसे खण्डन-मण्डनकी चीज बनाये, अपने मार्गपर सीधा-सीधा चलता रहे, तो वह साधना उसकी आगे बढ़ेगी और वह उसमें कामयाब होगा। यह बहुत कुछ कहना और सुनना जो होता है न, यह भगवच्चर्चाके लिये तो बड़ा उत्तम है, पर नये-नये सिद्धान्तोंका जो श्रवण है और नयी-नयी साधन-प्रणालियोंका जो श्रवण-मनन है, यह साधकके लिये व्याघात करनेवाला होता है—इसमें कोई सन्देह नहीं, इसलिये हमारे यहाँ ऐसी एक परम्परा थी कि साधक गुरुके समीप जाता, अपनी जिज्ञासा रखता, गुरु उसको जैसा अधिकारी मानते—उसके अनुसार उसे उपदेश करते, वह उसे जीवनमें उतारता और आगे बढ़ता चुपचाप; और यदि वह ऐसा न करे तो वह अधिकारी शिष्य नहीं माना जाता, वह उसका व्यभिचारी भावापन्न कहा जायगा। महाराज! जो आज एकको, कल दूसरेको, परसों तीसरेको बदलता रहे साधनको और साध्यको, उससे काम नहीं चलता, अपना साध्य एक और अपना साधन एक, इसमें निरन्तर लगा रहे। वरण करनेके लिये आवश्यकता इस बातकी है कि एकको सुने, एकको देखे, एकमें जाय, एकको ओर चले। यह बड़ी आवश्यक बात है। दूसरी बात क्या है? यह तो एक प्रश्नका उत्तर हुआ कि जहाँतक बने सजातीयको ग्रहण करे, विजातीयको ग्रहण न करे।

आजकल लोगोंने भगवान्‌को सट्टेकी तरह—जिसमें एक ही दिनमें लाखों रुपये आ जाते हैं—समझ रखा है। दो-चार मालाएँ फिरायें और भगवान् मिल जायँ तो भी बड़ी कृपा है। यदि एक जन्ममें भी न मिलें तो भी कुछ चिन्ता नहीं, हमारे यहाँ तो पुनर्जन्म होता है। [सन्त श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज]

दु:खकी निवृत्तिका उपाय

(स्वामी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती)

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति॥

आकाशको चमड़ीके समान शरीरमें लपेटनेमें यदि मनुष्य समर्थ होगा, तभी वह देवके दर्शनके बिना, ईश्वरका साक्षात्कार किये बिना दु:खसे पार हो सकेगा। विधिमुखसे इसी बातको इस प्रकार कह सकते हैं कि जैसे आकाशको चमड़ीके समान शरीरमें लपेटना असम्भव है, उसी प्रकार ईश्वरका दर्शन किये बिना दु:खसे पार पाना मनुष्यके लिये अशक्य है।

यह श्लोक श्वेताश्वतर-उपनिषद्का है। इसके बादके तीन श्लोकोंमें यह कहा गया है कि श्रीश्वेताश्वतर ऋषिने बहुत दारुण तप किया था और उसके बाद उनको इस उपनिषद्का ज्ञान प्राप्त हुआ। अतएव किसी भी अनधिकारी पुरुषको इस उपनिषद्का ज्ञान नहीं देना चाहिये।

परंतु आजके मुद्रणयन्त्रके वैज्ञानिक युगमें पैसेके अधिकारमें दूसरे सारे अधिकार समा जाते हैं। जैसे— एक निबन्ध लेखकने लिखा, कुछ मासिक-पत्रोंमें वह प्रकाशित हुआ और उनके सारे ग्राहकोंको यह अमूल्य ज्ञान बिना मूल्य तथा बिना परिश्रमके मिल गया। ऐसी स्थितिमें मनुष्य अवश्य यह सन्तोष कर लेता है कि मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया। परंतु बाँच लेनामात्र कोई ज्ञान नहीं है। जबतक मनुष्य साधनसम्पन्न नहीं होता, तबतक ज्ञानकी बातका मर्म या रहस्य उसकी समझमें आता ही नहीं और इस कारण वह हृदयमें नहीं उतरता। ज्ञानको पचानेके लिये साधन-सम्पत्तिकी अत्यन्त आवश्यकता है। अन्यथा वह ज्ञान केवल सुग्गेकी रट रह जाता है और केवल प्रदर्शन करनेमें ही उसका उपयोग होता है।

ज्ञानके लिये अधिकारके विषयमें एक सन्तने बहुत सुन्दर बात लिखी है, उसे देखिये—भक्तिके बिना ज्ञान सम्भव नहीं है, शरणागतिके बिना भक्ति नहीं होती। सद्गुरुके बिना शरणागतिका भाव नहीं आता और मुमुक्षुताके बिना सद्गुरुकी शरण नहीं मिलती। मैं कौन हूँ? ईश्वर कौन है? जगत् क्या है? ज्ञान क्या है?— यह जानकर स्वरूप-ज्ञान-प्राप्तिकी तीव्र इच्छाके बिना सच्ची मुमुक्षुता नहीं आती। वैराग्यके बिना तीव्र इच्छा नहीं होती। विषयका तिरस्कार हुए बिना वैराग्य नहीं टिकता। त्रिविध तापके संतापसे व्याकुल हुए बिना विषय-भोगके प्रति तिरस्कार नहीं होता। इन सब स्थितियोंमेंसे अपनी मनोदशाका विचार करके ही 'हे भगवन्! मैं तुम्हारा हूँ और तुम मेरे हो'—यों कहनेका अधिकार मिलता है। भगवान्का ज्ञान नहीं है, अपना भी भान नहीं है और 'मैं भगवान्का भक्त हूँ, भगवान् मुझपर कृपा करके मुझको अवश्य दर्शन देंगे, मैं मुक्ति पाऊँगा।'— ऐसा अनुमान करना व्यर्थ है। भगवान् कहेंगे कि तुझको अपनी फुरसतके समय भजन करनेकी आदत है तो मुझको भी अपनी फुरसतके समय ही सुननेकी आदत है।

इस बातको शास्त्र इस प्रकार समझाते हैं—

विषयासक्तिनाशेन विना न श्रवणं भवेत्।
ताभ्यां विना न मननं न ध्यानं तैर्विना क्वचित्॥

विषयासक्ति, भोग-लालसाका नाश किये बिना गुरु-उपदेशका यथार्थ श्रवण भी नहीं हो सकता। जबतक चित्त विषयोंमें ही भटकता रहता है, तबतक एकाग्रतापूर्वक श्रवण ही नहीं बन सकता। इसी प्रकार बाँचनेकी बात भी समझ लेनी चाहिये। जबतक श्रवण और पठन ठीक-ठीक नहीं होता, तबतक उसका मनन किस प्रकार हो सकता है? और जिसका मनन न हो, वह विषय भला, अन्त:करणमें स्थिर कैसे रह सकता है? और जो विषय अन्तरमें स्थिर न हो, वह जीवनमें कैसे उतर सकता है?

फिर ज्ञानको स्थिर रहनेके लिये जगह चाहिये। ज्ञानके स्थिर होनेका स्थल है अन्त:करण। उसमें यदि विषय-वासनाओंके जाले भरे हों तो वहाँ ज्ञान किस प्रकार रह सकेगा? व्यवहारमें भी यही बात दीख पड़ती है। एक लोटेमें पानी भरा है; यदि उसमें दूध लेना हो तो पानी उँडेले बिना, यानी लोटेको खाली किये बिना उसमें दूध नहीं ले सकते। यही बात ज्ञानकी है। ज्ञानके लिये भी अन्त:करणको खाली करना आवश्यक है। इस प्रकार ज्ञानके लिये अधिकारकी विशेष आवश्यकता है, उसके बिना ज्ञान नहीं होता।

दुःखकी निवृत्तिके लिये जो देवके साक्षात्कारकी बात ऊपर कही गयी है, उसका स्वरूप समझाते हुए भगवान् श्रीशंकराचार्य कहते हैं—

को देवो यो मनःसाक्षी मनो मे ज्ञायते मया।
तर्हि देवस्त्वमेवासि एको देव इति श्रुतेः॥

शिष्य—देव कौन है? देवका स्वरूप क्या है?

गुरु—जो मनके व्यवहारको जानता है, वही देव है।

शिष्य—अपने मनके व्यवहारको तो मैं ही जान सकता हूँ, दूसरा कोई भी नहीं जान सकता।

गुरु—ऐसी अवस्थामें तुम स्वयं देव हो। तुम्हारा अन्तरात्मा ही वह देव है, जिसके दर्शनसे दुःखकी निवृत्ति होती है। इसका कारण श्रुति यह बतलाती है कि वह चाहे जहाँ, चाहे जिस रूपमें प्रकट हो, परंतु देव एक ही है और अद्वितीय भी है।

उपर्युक्त संवादमें श्रीशंकराचार्यने श्रुतिका प्रमाण दिया है। वह श्रुति इस प्रकार है—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥

भले ही वह विभिन्न स्वरूपोंमें तथा स्थलोंमें प्रकट होता हो, तथापि जहाँ है वहाँ देव एक ही है। वह प्राणीमात्रके हृदयमें छिपा हुआ है। वह सर्वव्यापक है, यानी वह कहाँ नहीं है, यह कहना ही नहीं बनता। वह अप्रकट रहता है, फिर भी प्राणीमात्रमें अन्तरात्माके रूपमें स्थित है। उसके सान्निध्यमात्रसे प्राणी अपना-अपना व्यवहार करनेमें समर्थ होते हैं। वरं वही सचराचर जगत्को धारण कर रहा है। वही देव मन और बुद्धिके साक्षीरूपमें सर्वत्र प्रकट भी दीखता है; क्योंकि वह चिन्मात्र है, चैतन्यस्वरूप है। एक तथा अद्वितीय है तथा निर्गुण और गुणातीत भी है।

उपर्युक्त मन्त्र भी श्वेताश्वतर-उपनिषद्का है और उसमें ऋषि कहते हैं कि अन्तरात्मा ही देव है और आत्मसाक्षात्कारसे दुःखकी निवृत्ति होती है। इस उपनिषद्में देवका सविशेष वर्णन इस रूपमें आता है—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

उस देवका कोई शरीर नहीं और शरीर न होनेके कारण इन्द्रियाँ भी नहीं हैं; वह अद्वितीय है, यानी उसके जैसा दूसरा कोई नहीं है; उससे अधिक तो फिर कोई हो ही कैसे सकता है! श्रुति कहती है कि उसकी शक्तियाँ विविध और असाधारण हैं। परंतु उसमें ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति स्वाभाविक रीतिसे ही काम करती रहती हैं। इन दोनों शक्तियोंकी स्वाभाविक क्रियाशीलताके कारण ही अनन्त ब्रह्माण्डोंका आविर्भाव और तिरोभाव हुआ ही करता है।

अब यदि दुःखकी निवृत्ति करनी है तो पहले उसका स्वरूप देखिये। साधारण अवलोकन करनेसे भी ज्ञात हो जायगा कि बारम्बार जनमना और बारम्बार मरना तथा उतनी ही बार गर्भवासकी यातनाएँ भोगना—इसके समान दूसरा कोई भी दुःख इस जगत्में नहीं है। आधि, व्याधि और उपाधि-जैसे दूसरे दुःख तो क्षणिक होते हैं और उनका परिपाक होनेपर वे निवृत्त भी हो जाते हैं तथा ये दुःख भी तो उन्हींको होते हैं, जिन्होंने जन्म लिया है। इसलिये इनका समावेश जन्मके दुःखके अन्तर्गत ही हो जाता है।

सुभाषित कहता है—

जन्म दुःखं जरा दुःखं जाया दुःखं पुनः पुनः।
अन्तकाले महादुःखं तस्माज्जागृहि जागृहि॥

पहले गर्भवासका दुःख भोगना पड़ता है और फिर पाक-काल आनेपर जन्मका दुःख भोगना पड़ता है। यह दुःख कोई ऐसा-वैसा नहीं। जिस प्रकार कोल्हूमें पेरे जानेके बाद ईखका रस बाहर आता है, वैसे ही उस समयका यह दुःख है। उसके बाद वृद्धावस्थाके अनेकों दुःख भोगने पड़ते हैं। पुनः प्रत्येक जन्ममें स्त्री-पुत्र आदिके वियोगका दुःख भी भोगना ही पड़ता है और मृत्युका दुःख भी महाभयंकर होता है। इसीलिये सुभाषितकार कहते हैं—**जागृहि जागृहि** 'मोहनिद्रामें न पड़े रहो, ईश्वरका ज्ञान सम्पादन करो और जन्म-मृत्युरूपी समुद्रको पार कर जाओ।'

अब देवका ज्ञान अर्थात् ईश्वर-साक्षात्कार या आत्म-साक्षात्कारका स्वरूप देखकर निबन्ध समाप्त करेंगे। इसी

उपनिषद्‌में इसका स्वरूप इस प्रकार समझाया गया है—

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते
तस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा
जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति ॥

यह ब्रह्मचक्र इतना विशाल है कि इसमें सारे जीव अपनी आजीविका प्राप्त कर सकते हैं और उसमें अवस्थित भी रहते हैं। इस ब्रह्मचक्रमें जीवात्मा (हंस) अनादिकालसे भ्रमण कर रहा है। क्यों उसे भ्रमण करना पड़ता है, इसका कारण समझाते हुए कहते हैं कि वह अपनेको परमात्मासे भिन्न मानता है, इसी कारण उसे ब्रह्मचक्रमें भटकना पड़ता है। 'यह भटकना कैसे बन्द हो?' इसका उपाय बतलाते हुए कहते हैं कि यदि जीवात्मा अपनेको परमात्मासे अभिन्न अनुभव करे तो उसी क्षण उसका भटकना बन्द हो जाय और वह अपने मूल अजर, अमर और अविनाशी स्वरूपको प्राप्त हो जाय। कहनेका तात्पर्य इतना ही है कि जबतक आत्मा अपनेको परमात्मासे पृथक् मानता है, तबतक वह जीव या जीवात्मा कहलाता है। जहाँ जीवभाव आया, वहाँ कर्त्ता-भोक्ताका अभिमान आता है और उससे जन्म-मरणकी परम्परामें भटकना अनिवार्य हो जाता है।

आत्मामें जीवभाव कैसे आता है, इसके विषयमें योगवासिष्ठमें लिखा है कि 'सृष्टिके आरम्भकालमें ब्रह्म ही सृष्टिरूप हो जाता है। ब्रह्मादिक, जो ब्रह्मरूप ही हैं; वे सृष्टिके आदिकालमें प्रकट हो जाते हैं; तथा दूसरे जीव भी, जो ब्रह्मरूप ही हैं, सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें प्रकट हो जाते हैं। जो अज्ञानके आवरणके कारण अपने ब्रह्मभावको भूलकर अपनेको ब्रह्मसे पृथक् मानते हैं, वे रजोगुण और तमोगुणके द्वारा मिश्रित सत्त्वगुणके परिणाममें होनेवाले जीवभावको स्वीकार करके इस जगत्‌की वासनाके संस्कारसे युक्त होकर पहले मर जाते हैं। फिर प्रारब्धका भोग भोगनेके लिये उनका जन्म होता है; क्योंकि स्वयं ब्रह्मरूप होनेपर भी, इस बातको भूलकर वे जड़ देहादिमें आत्मबुद्धि करके जन्म-मरणके चक्रमें फिरा करते हैं। समयपर जब वे स्वयं ही अपने मूलस्वरूपको पहचान लेते हैं—मैं ही ब्रह्मरूप या परमात्मरूप हूँ, यह निश्चय कर लेते हैं, तब उनका जन्म-मरण बन्द हो जाता है। इस स्थितिको मोक्ष या मुक्ति कहते हैं।' (जिस अज्ञानके आवरणके कारण जीव अपने ब्रह्मभावको भूलकर अपनेको ब्रह्मसे पृथक् मानता है, उस अज्ञानको शास्त्र 'अविद्या' कहते हैं और वह मूलमें ही रहती है, अतएव उसे मूलाविद्या कहते हैं।)—यो० वा० नि० उ० सर्ग १४२।

अविद्याके कारण आये हुए इस जीवभावकी निवृत्तिके लिये इस नीचे लिखे श्लोकको खूब समझकर इसपर मनन करना चाहिये। ऐसा करते-करते जीव और शिवका अभेद समझमें आ जायगा और ब्रह्मचक्रमें भटकना बन्द हो जायगा।

देहो देवालयः प्रोक्तः स जीवः केवलः शिवः।
त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहंभावेन पूजयेत्॥

इस शरीरको तो देवताका मन्दिर समझो। इसमें जो चैतन्य है, जिसे जीव कहते हैं, वह स्वभावतः शिवस्वरूप ही है। अपने अज्ञानसे तुम व्यर्थ ही जीवरूप बन गये हो। अतएव इस अज्ञानरूपी निर्माल्यको शिवके ऊपरसे हटाकर मैं शिवस्वरूप आत्मा हूँ, ऐसा चिन्तन दृढ़तापूर्वक किया करो, इससे तद्रूप हो जाओगे।

इस बातका प्रमाण शास्त्रमें इस प्रकार मिलता है—

क्रियान्तरासक्तिमपास्य कीटको
ध्यायन्नलित्वं ह्यलिभावमृच्छति।
तथैव योगी परमार्थतत्त्वं
ध्यात्वा समायाति तदेकरूपताम्॥

क्रियामात्रसे आसक्ति हटाकर कीड़ा भ्रमरका ध्यान करते-करते भ्रमररूप हो जाता है। इसी प्रकार योगी, जो समस्त व्यवहारोंसे आसक्ति हटाकर केवल आत्माका ही ध्यान करता है, यदि तद्रूप हो जाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

इसीलिये श्रीशंकराचार्य कहते हैं—

अहर्निशं किं परिचिन्तनीयं
संसारमिथ्यात्वशिवात्मतत्त्वम् ॥

प्रश्नोत्तरीमें प्रश्नरूपमें वे पूछते हैं कि रात-दिन किसका चिन्तन करना चाहिये? इसीका उत्तर देते हुए वे कहते हैं कि यह जन्म-मरणरूपी संसार मिथ्या है और मैं तो शिवस्वरूप आत्मा हूँ—ऐसा चिन्तन निरन्तर करते रहना चाहिये।

साधकोंके प्रति—

[नाशवान्‌की मुख्यतासे हानि]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

हमलोगोंकी मुख्य भूल क्या होती है? यह कि जो जड़ है, नाशवान् है, परिवर्तनशील है, उसे तो हम सच्चा मान लेते हैं, मुख्य मान लेते हैं और जो चेतन है, अविनाशी है, अपरिवर्तनशील है, उसे गौण मान लेते हैं। हम शरीरकी मुख्यताको लेकर सब काम करते हैं। हम तो यहीं (संसारमें) रहनेवाले हैं, यहाँके ही आदमी हैं—इस प्रकार हमने अपनेको शरीर-संसारके साथ मान लिया है। शरीरका आदर हमारा आदर हो गया, शरीरकी निन्दा हमारी निन्दा हो गयी—इस प्रकार जड़ताकी मुख्यताको लेकर चलने लगे और चेतनकी मुख्यताको बिलकुल भुला दिया है, मानो है ही नहीं। मुख्यमें अमुख्यकी भावना और अमुख्यमें मुख्यकी भावना; जो वास्तविक है, उसका तिरस्कार और जो अवास्तविक है, उसका आदर—यह मूल भूल हो गयी। अब कई भूलें होंगी! एक भूलमें अनन्त भूलें होती हैं।

धुर बिगड़े सुधरे नहीं, कोटिक करो उपाय।
ब्रह्माण्ड लौं बढ़ गये, वामन नाम न जाय॥

भगवान्‌के अवतारोंमें सबसे लम्बा 'त्रिविक्रम' अवतार हुआ, जिसके तीन कदम भी त्रिलोकीमें पूरे नहीं हुए! परंतु उसका नाम तो 'वामन-अवतार' ही हुआ। इतना बड़ा अवतार होनेपर भी नाम तो छोटा ही रहा। कारण कि आरम्भमें, मूलमें ही बात बिगड़ गयी, तो अब कितना ही प्रयत्न करो, बात सुधरेगी नहीं। ऐसे ही मूलमें जड़ताको मुख्यता दे दी, तो अब भूलोंका अन्त नहीं आयेगा, तरह-तरहकी भूलें होंगी। यदि हम इस भूलको सुधारना चाहें तो हमारे लिये एक बहुत आवश्यक बात यह है कि हम जड़ और क्षणभंगुर शरीरकी मुख्यता न रखें।

यह प्रत्यक्ष अनुभवकी बात है कि मैं नहीं बदला हूँ, शरीर बदला है। फिर भी बदलनेवालेको ही मुख्यता देते हैं कि हम छोटे हो गये, हम बड़े हो गये, हम स्वस्थ हो गये, हम बीमार हो गये, हमारा आदर हो गया, हमारा निरादर हो गया! कहाँ तुम्हारा आदर हो गया? कहाँ तुम्हारा निरादर हो गया? हमारी बात नहीं रही, तुम्हारी बात रह गयी तो बाधा क्या लगी? इस न रहनेवाली वस्तुकी भी कोई सत्ता है क्या? इसकी भी कोई महत्ता है क्या? पर मूलमें जड़ताकी, नाशवान्‌की मुख्यता मान ली। जो वास्तविकता है, उसकी परवाह ही नहीं! अब बातें सुनाओ, पढ़ाओ, सब कुछ करो, पर भूलको छोड़ेंगे नहीं! बस हमारे नामकी महिमा होनी चाहिये, हमारे रूपका आदर होना चाहिये—यह बात भीतर बैठी है। अब कितना ही सुनो-सुनाओ, सब रद्दी हो जायगा। अब इस बातको जान लें कि वास्तवमें नाम हमारा नहीं है, हमारा रूप शरीर नहीं है। जब पेटमें थे, तब नाम नहीं था। जब जन्मे, तब भी नाम नहीं था। दस दिनके बाद नाम रख दिया गया। वह नाम भी यदि बादमें बदल दिया गया तो उसे पकड़ लिया। नाम और रूप—दोनों बदलनेवाले हैं, मिटनेवाले हैं। जो मिटनेवाला है, उसे तो पकड़ लिया और जो रहनेवाला है, उसकी परवाह ही नहीं! आप-से-आप भी विचार नहीं करते और कहनेपर भी ध्यान नहीं देते, कितनी बड़ी भूलकी बात है! कम-से-कम उसपर ध्यान तो देना चाहिये कि यह बात ऐसी है; अब तो हम चेत गये, होशमें आ गये; अब ऐसी भूल नहीं करेंगे। यदि अभी ध्यान नहीं दिया तो जितना दु:ख भोगना पड़ेगा, इसीसे ही भोगना पड़ेगा। जन्म-मरण भी इसीसे होगा। नरक भी इसीसे होगा। बिलकुल उलटी बात पकड़ ली, तो अब उसका परिणाम सुलटा कैसे होगा? उलटा ही परिणाम होगा। अभीसे सावधान होकर अपना काम ठीक तरहसे कर लेना चाहिये, नहीं तो बड़ी दुर्दशा होगी भाई!

एक नियम है कि जिसे मान लेते हैं, उसमें जिज्ञासा नहीं होती, शंका नहीं होती। वहाँ यह बात उत्पन्न ही

नहीं होती कि यह क्या वस्तु है? अतः मानना ही हो तो भगवान्‌को मान लो। माननेके बाद फिर शंका मत करो, सन्देह मत करो। जैसे, ब्याह हो गया, तो हो गया, बस। अब उसमें कभी भी शंका नहीं होती, सन्देह नहीं होता, जिज्ञासा नहीं होती। जैसे बोध हो जानेपर अज्ञान नहीं होता, ऐसे ही मान लेनेपर मानना उलटा नहीं होता। मानना और जानना—दोनों मार्ग स्वतन्त्र हैं। मानना परमात्माको है और जानना स्वरूप तथा संसारको है।

ये तीन बातें बड़े ध्यान देनेकी हैं कि हमारे पास जितनी वस्तुएँ हैं, वे पहले हमारी नहीं थीं, पीछे हमारी नहीं रहेंगी और इस समय भी हमसे प्रतिक्षण अलग हो रही हैं। यहाँ आकर बैठे, उस समय जितनी आयु थी, उतनी अब नहीं रही, मौत उतना निकट आ गयी। शरीरका प्रतिक्षण वियोग हो रहा है। भगवान्‌ने कहा है—'**अन्तवन्त इमे देहाः**' (गीता २। १८) अर्थात् ये शरीर अन्तवाले हैं। जैसे धनवान् होता है, ऐसे ही ये शरीर अन्तवान् हैं, नाशवान् हैं; परंतु जो सब जगह परिपूर्ण अविनाशी है, उसे मुख्यता न देकर विनाशीको मुख्यता दे रहे हैं—यहाँ भूल होती है। इसका सुधार कर लिया जाय तो सब सुधर जायगा।

मुख्यता स्वयंकी रहनी चाहिये। मुक्ति भी स्वयंकी होती है, शरीरकी नहीं। शरीरको अपना माननेसे ही बन्धन हुआ है। उलटा मान लिया—यही बन्धन है। अतः चाहे सुलटा मान लो, चाहे ठीक तरहसे जान लो कि बन्धन क्या है, मुक्ति क्या है। फिर काम ठीक हो जायगा। उलटा मान लेते हो और जानते हो नहीं—यही भूल है।

एक मिश्रीके पहाड़पर रहनेवाली कीड़ी (चींटी) थी और एक नमकके पहाड़पर रहनेवाली। मिश्रीके पहाड़वाली कीड़ीने दूसरी कीड़ीसे कहा कि 'तू यहाँ क्या करती है? मेरे साथ चल। मिठास तो हमारे वहाँ है!' नमकके पहाड़वाली कीड़ी बोली कि 'क्या वहाँ इससे भी बढ़िया मिठास है?' दूसरी कीड़ी बोली कि 'कैसी बात करती है! बढ़िया-घटियाकी बात तो तब हो, जब वहाँ मिठास हो। वहाँ मिठास है ही नहीं, वहाँ तो बिलकुल इससे विरुद्ध बात है।' फिर वह नमकके पहाड़वाली कीड़ीको अपने यहाँ ले गयी और बोली कि 'देख, यहाँ कितना मिठास है।' नमकके पहाड़वाली कीड़ी बोली कि 'मुझे तो कोई अन्तर नहीं दीखता! तुम कहती हो तो मैं 'हाँ-में-हाँ मिला दूँ, पर मुझे तो वैसा ही स्वाद आ रहा है।' मिश्रीके पहाड़वाली कीड़ीको आश्चर्य हुआ कि बात क्या है! उसने ध्यानसे देखा तो पता चला कि नमकके पहाड़वाली कीड़ी अपने मुखमें नमककी डलीको पकड़े हुए है, अब दूसरा स्वाद आये ही कैसे? उससे कहा कि 'नमककी डलीको मुखसे निकाल दे, फिर देख इसका स्वाद।' उसने नमककी डली मुखसे निकालकर मिश्रीको चखा तो बस, उसीके साथ चिपक गयी। मिश्रीके पहाड़वाली कीड़ीने पूछा कि 'बता, कैसा स्वाद है?' तो वह बोली—'हल्ला मत कर, चुप हो जा।' ऐसे ही आप सब बातें सुनते हैं, पर नमककी डलीको पकड़े रहते हैं कि शरीर सच्चा है, शरीरका मान-अपमान सच्चा है, शरीरका आराम सच्चा है, शरीरका सुख अच्छा है, आदि। इस बातको ऐसे जोरसे पकड़े रहते हैं कि कहीं यह ढीली न पड़ जाय, कहीं यह मान्यता शिथिल न पड़ जाय! ऐसी सावधानी रखते हुए सत्संग करते हैं। वास्तवमें यह कुसंग (असत्‌का संग) हो रहा है, सत्संग नहीं हो रहा है।

मान्यता होनेपर फिर शंका नहीं रहती, जिज्ञासा नहीं रहती। मेरा अमुक नाम है—ऐसा माननेपर फिर यह नहीं होता कि मेरा अमुक नाम कैसे है? कबसे है? क्यों पड़ा है? विवाह होनेपर आप मान लेते हैं कि वह मेरी पत्नी है और वह मान लेती है कि ये मेरे पति हैं। पति क्यों हैं? कैसे हैं? कबसे हैं? कितने दिन रहनेवाले हैं?—ऐसा कोई विचार पैदा ही नहीं होता। इसी तरह 'मैं शरीर हूँ' यह मान्यता दृढ़ कर ली, तो अब मान, बड़ाई, आदर, निरादर आदि जो कुछ है, वह हमारा कैसे हो रहा है—यह शंका ही नहीं होती। जब बनावटी बातको माननेसे यह दशा होती है, तो फिर भगवान् हमारे हैं और हम भगवान्‌के हैं'—इस वास्तविक

बातको दृढ़तासे मान लें, निहाल हो जायँ! यदि अब भी सावधानी हो जाय तो बड़ी अच्छी बात है, नहीं तो यह सावधानी कब होगी?

उत्पत्ति-विनाशशील वस्तु ही क्रियासाध्य होती है और उसीकी प्राप्तिमें समय लगता है। तत्त्वप्राप्तिमें समय नहीं लगता; क्योंकि तत्त्व क्रियासाध्य नहीं है। वह तो स्वतःसिद्ध है। सीधी बात है कि शरीर बार-बार जन्मता-मरता है और स्वयं वही-का-वही रहता है—**'भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते'** (गीता ८।१९)। **'स एवायम्'** स्वयं है और **'भूत्वा भूत्वा प्रलीयते'** शरीर है। जो रहता है, उसे तो मानते नहीं और जो जाता रहता है, उसे मानते हैं। अतः इसमें थोड़ा जोर लगायें कि ऐसा हम नहीं मानेंगे। अब निरादर हो गया तो क्या हो गया? अपमान हो गया तो क्या हो गया? जैसे पत्थरका निरादर हो गया तो क्या? अपमान हो गया तो क्या? सही बातको सही मान लें, बस। सही बात समझमें नहीं आये तो शास्त्र और संत-महात्माकी बात मान लें कि भगवान् हैं और वे हमारे हैं। उनकी बात माननेसे भगवत्प्राप्तिकी जिम्मेवारी उन्हींपर आयेगी, परंतु यदि उनकी बात नहीं मानेंगे, उलटी बात मानेंगे, तो इसकी जिम्मेवारी आपपर आयेगी अर्थात् इसका दण्ड आपको भोगना पड़ेगा।

आप सिद्ध नहीं कर सकते कि शरीर मैं हूँ। बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी वह बात सिद्ध नहीं कर सकते कि शरीर मैं ही हूँ। उलटी बात कैसे सिद्ध होगी? परंतु आपने उलटी बातको पकड़ रखा है! नाम, रूप, जाति, वर्ण, आश्रम, देश आदिको पकड़कर बैठे हैं। उसे छोड़ेंगे नहीं, भले ही कोई कुछ कहे। कारण कि उस बातको मान लिया है और मान लेनेके बाद जिज्ञासा होती ही नहीं। परमात्माको न मानकर उसपर शंका करते हैं। वास्तवमें यह माननेकी वस्तु है, शंका करनेकी वस्तु नहीं है। शंका करनी हो तो संसारपर करें अथवा स्वयं अपनेपर करें। ये दो ही जिज्ञासाके विषय हैं। परमात्माको न मानें तो फिर बिलकुल मत मानें और मानें तो फिर बिलकुल मानें; परंतु उलटी बातको न मानें। जो प्रत्यक्षमें नाशवान् है, टिकनेवाली वस्तु नहीं है; जो पहले नहीं थी, पीछे नहीं रहेगी, वह बीचमें कैसे हो गयी—इस बातको ठीक समझ लें तो, फिर सब ठीक हो जायगा।

'मैं सेवक सीतापति मोरे'

(पं० श्रीबाबूलालजी द्विवेदी, 'मानस मधुप', साहित्यायुर्वेदरत्न)

भाव कुभाव सुश्रुषा कैसी, पता न सेवा धर्म।
उर प्रेरक जो कहते-करता, जग के सारे कर्म॥
कुछ भी नहीं पात्रता, फिर भी कहते मुझे न शर्म।
तेरा हूँ! इस अहंकार का ही पहिना है वर्म॥

अस अभिमान जाइ जनि भोरे—मुनि सुतीक्ष्ण की बानी।
मैं सेवक सीतापति मोरे—यही टेक मनमानी॥
किसी योनि में जन्म मिले, पर रहे न मन में ग्लानी।
तुलसी के मानस का सम्बल, पाई यही निशानी॥

सेवक सेव्य भाव बिनु भव से कोई पार न पाया।
तरना मुश्किल, प्रियतम से मिलने को मन ललचाया॥
भटका, भटक रहा, भटकों ने भी मिलकर भटकाया।
युग बीते थक गया जगत ने अब तक खूब रुलाया॥

तुम अखण्ड मैं खण्ड, सदा से सत्ता एक रही है।
ईश्वर अंश जीव अविनाशी—जो यह उक्ति सही है॥
अहम् अस्मि, तत् त्वम् असि, तत्त्वम् असि में इतना जोड़ो।
मैं तेरा हूँ, तू मेरा है—तू तू मैं मैं छोड़ो॥

'उर अंकुरेउ गर्व तरु भारी'—चौरासी को भोग।
योग, वियोग, सुयोग कहूँ या इसको जुगुल सँयोग॥
करुणाकर की करुणा का हूँ, करुणिक, हे करुणाकर!
बानक, आनक बना अचानक, प्रभु आकर करुणाकर॥

मैं तेरा हूँ! तुम मेरे हो, मैं कहता—तुम कह दो।
प्राण प्राण धन तू मेरा है! बस इतना ही कह दो॥
अधमोद्धारक आप, अधन की यही माँग या सेवा।
'मधुप' धन्य हो जाय कृपा फल, पाकर मन की मेवा॥

धनकी अन्धपूजा

(श्रीरमणलाल बसंतलाल देसाई)

मेरे समीप एक पुष्प पड़ा है; साथ ही एक रुपया भी पड़ा है।

रुपया न जाय, इसके लिये मैं सावधानी रखता हूँ; पुष्पको कोई ले जाय तो मैं उसे ले जाने देता हूँ।

परंतु मेरे सामने एक महाप्रश्न आ खड़ा होता है।

'पसन्द कर ले! जीवनभर तुझे एक ही वस्तु मिलेगी, पुष्प या रुपया।'

मैं क्या पसन्द करूँगा?

पुष्प; रुपया नहीं। जिस जीवनमें बिना पुष्पका रुपयोंका ढेर सामने आनेवाला हो, उस जीवनमें सौरभ कहाँ?

आज एक रुपयेके चाहे दो सेर गुलाब मिलते हों; परंतु यह रुपया जिस दिन एक भी गुलाब न दिला सकेगा, उस दिन किसका मूल्य अधिक होगा?

गुलाबका ही। हम जरा सच्चा मूल्य आँकनेका प्रयत्न करें।

मेरे पास धनका ढेर है। मैं रेतीके कछारमें चला जा रहा हूँ। मुझे प्यास लगती है। यह प्यास उग्र हो उठती है। पैसे-दो-पैसेमें सामान्यत: जलका एक घड़ा प्राप्त करनेवाला मैं दो रुपये, दो हजार रुपये, दो करोड़ या दो अरब रुपये देकर जलका एक प्याला प्राप्त करना चाहता हूँ।

पानीके प्यालेकी कीमत मेरे धनभण्डारसे बढ़ जाती है। यहाँ किसका मूल्य अधिक है? करोड़पति धनवान्‌का या पानीका प्याला प्राप्त करनेवाले किसी बनजारेका?

बंगाल या उड़ीसाके उपवासियोंसे पूछो—

तुझे सेरभर चावल दूँ या सेरभर सोनेकी मुहरें? वह मनभर सोनेकी मोहरोंको ठोकर मारकर एक सेर चावल झड़प लेगा।

जीवनकी पहली जरूरत—अन्न; धन नहीं। सन्तानरहित एक धनीने गाँवमें रहनेवाले एक सम्बन्धीके बालकको शहरमें अपने भव्य भवनमें बुलाया। झोंपड़ीमें रहनेवाला वह बालक बिना माँ-बापके महलमें झूरने (सूखने) लगा। झोंपड़ीपर वापस पहुँचा, तब उसके चेहरेपर प्रकाश दिखायी दिया।

महल झोंपड़ीसे ज्यादा बड़ा, अधिक मूल्यवान्, अधिक सुख-सुविधासे युक्त, पर उस बालकके लिये नहीं। बालकके मनमें उसकी झोंपड़ी ही अधिक प्रशस्त है, अधिक मूल्यवान् है और अधिक सुखप्रद है। सुख-सुविधाका मूल्य बालकके मनमें दूसरा ही है।

एक गायिका नवाबी दरबारके मुजरेमें गाकर हजारोंका इनाम पाती है, पर अजमेरकी दरगाहमें बिना इनाम मनसे गाती है। इन दोनों संगीतोंके भेदपर भी ध्यान दिया है? बिना इनामका संगीत ज्यादा बढ़िया होता है। कारण?

नवाबी दरबारमें संगीतका मूल्य है।

अजमेर-शरीफकी दरगाहके पासका संगीत अमूल्य है, इसीलिये वह बढ़िया है।

यों रुपयेसे पुष्प बढ़िया, पैसोंसे पानी बढ़िया, धनसे अन्न बढ़िया, महलसे झोंपड़ी बढ़िया और भाड़ेके संगीतकी अपेक्षा दिलका संगीत बढ़िया।

इतना होनेपर भी हमारा यह युग धन-पूजक बन गया है। धन—माल, सुख, साधन और सुविधाकी अदला-बदली करनेका बाट—अनाज, कपड़ा, मकानकी अदला-बदली करनेवाली तकड़ी; इस तकड़ीको—इस बाटको देवता बनाकर हमलोग बुतपरस्त हो गये हैं और इस झूठे देवताके पूजनमें सुख, सुविधा और सन्तोष—सब कुछ खो बैठे हैं।

छोटा-सा साधन हमारी सिद्धि बन गया है। जादूगर धनको फुलकेकी तरह फुलाते हैं और वह फुलका पानीके बुदबुदेकी तरह फूट जाता है।

यह धन विपुल बन गया है, सर्वत्र फिरनेवाला बन गया है—इतनेपर भी आज सर्वत्र दुर्भिक्ष फैल रहा है! जगत्‌की भूख मिट जाय, इतना अनाज होनेपर भी जगत् भूखों मरता है! धन-पूजाका यह एक परिणाम। चायके बगीचोंकी कथा सुनी है? धन-पूजनने धनको मानव-रुधिरसे रँग दिया है; बगीचोंको वह कसाईखाना बना रहा है।

सब सुखसे रह सकें—इतनी ज़मीन है, इतने मकान

हैं, इतना सामान है; इतनेपर भी जगत्‌के असंख्य मनुष्योंके रहनेके लिये घर नहीं है, पहननेको वस्त्र नहीं है और खानेको दाना नहीं है। कारण यही कि धनका ढेर जमा करके उसपर धनी लोग नाग बनकर चढ़ बैठे हैं।

खादी पहनकर, असहयोगका नाम लेकर तालियाँ पिटवानेवाले अनेकों कथित देशसेवक—आज धन-पूजनमें युद्ध-पूजन कर रहे हैं। उनकी शरम सूख गयी है। हमारे आस-पास हम उन्हें देख सकते हैं।

और इसी धन-भक्ति—अन्ध धन-भक्तिमें तेल, लोहा, रबड़ और कोयलेके ठेकेदार जगत्‌में महाभारत रचाकर करोड़ों मनुष्योंको तबाह कर रहे हैं।

जगत्‌को संस्कारी बनानेवाले स्मरणीय पुरुषोंमें भी कोई धनी था क्या?

ईसामसीह—गरीब-से-गरीब यहूदी था।

बुद्ध—राज-पाट छोड़कर अपनी खुशीसे बना हुआ एक भिक्षु था।

मुहम्मद—उपवास करनेवाला एक फकीर था।

शंकर—सातवें वर्षमें ही संन्यास ग्रहण करनेवाला एक अकिंचन ब्राह्मण था।

धनकी अन्धपूजा धनको राक्षस—Moloch बना देती है और धनकी सच्ची कीमत धनको लक्ष्मी बनाती है।

आज तो धन संहारका, सन्तापका, अश्रुओंका और असूयाका मूल झरना बन गया है। इसके आसपास चन्द्रमाकी चाँदनी नहीं, अमावसकी कालिमा है। आजका धन शापित धन है।

आजका मेरा संकल्प है—

जो धन रुधिरसे सना हो, आँसुओंसे भींगा हो, असूयाकी कालिमासे कलुषित हो, जो सबके काममें न आनेवाला इकलखोर हो, उस धनका मुझे स्पर्श न मिले।

चाहे मैं भूखा होऊँ, घरविहीन होऊँ, वैभवहीन होऊँ; आजके इस काले धनसे धनी होनेकी अपेक्षा धनहीन उपवासी होनेमें अधिक गौरव है। **[शारदा]**

नीति-विभूषण

(श्रीसुभाषचन्द्रजी बग्गा)

राजनीतिके चार अंग बताये गये हैं—साम, दान, दण्ड और भेद। अच्छे शासकको किसी-न-किसी रूपमें इनका उपयोग करना पड़ता है। इनका उपयोग धर्मके आधारपर ही होना उचित है। धर्मसे विमुख होनेपर ये साधन भी निष्फल हो जाते हैं। धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजका कहना था कि 'धर्मनियन्त्रित राजनीति ही कल्याणकारी है।'

श्रीरामचन्द्रजीने राज्यधर्मको एक भिन्न आदर्श प्रदान किया। जिसका केन्द्र शासक न होकर सिद्धान्त है। जो अन्याय कर रहा है, वह विरोध करनेयोग्य है, भले ही वह कोई क्यों न हो। इसलिये विभीषणको देशद्रोही कहना मिथ्यावादी सिद्धान्तनिष्ठापर आधारित है। भगवान् राम राजनीतिको जननीतिके रूपमें परिवर्तित कर देते हैं। इसीलिये उनकी मित्रताका केन्द्र निर्बल, पराजित और पीड़ित व्यक्ति भी थे।

गुरु वसिष्ठने इसी विलक्षणताको दृष्टिगत रखकर श्रीरामजीके लिये यही कहा था—

नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथु॥

(रा०च०मा० २।२५४।५)

रावण हठी, बलवान् और अहंकारी था। वह अशोक-वाटिकामें सीताजीको वशमें करनेके लिये मन्दोदरी तथा बहुत-सी अन्य स्त्रियोंको साथ लेकर आता है तथा साम, दान, दण्ड और भेदनीतिसे समझानेका प्रयत्न करता है—

बहु बिधि खल सीतहि समुझावा। साम दान भय भेद देखावा॥

(रा०च०मा० ५।९।३)

लेकिन रावणको दूसरोंद्वारा नीति नहीं भाती। उसको कई व्यक्तियोंने परामर्श दिया कि सीताजीको श्रीरामके पास पहुँचानेमें ही उसका कल्याण है। हनुमान्‌जीने रावणको भक्ति, विवेक, वैराग्य और राजनीतिसे सनी हुई वाणीसे समझाया। उन्होंने उसे अहंकार

छोड़कर उनकी शिक्षा ग्रहण करनेको कहा। शिक्षा तो अहंकार छोड़कर ही ग्रहण की जाती है। रावणसे वार्तालाप करते हुए हनुमान्‌जी साम, दान, दण्ड और भेद—चारों प्रकारकी नीतियाँ अपनाकर बात करते हैं।

सामनीति

पहले तो वे रावणसे हाथ जोड़कर विनती करते हैं और कहते हैं कि मेरी शिक्षा अहंकार छोड़कर सुनो—

बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥

(रा०च०मा० ५। २२। ७)

दामनीति

फिर कहते हैं कि यदि तुम लंकापर अचल राज्य करना चाहते हो तो श्रीरामके चरण-कमलोंको हृदयमें धारण करो—

राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू॥

(रा०च०मा० ५। २३। १)

दण्डनीति

उसके पश्चात् सावधान करते हैं—हे रावण! श्रीरामसे विरोध करनेवालेका कोई रक्षक नहीं; स्रोतरहित नदियाँ वर्षाके बाद सूख जाती हैं—

राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥
सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं॥

(रा०च०मा० ५। २३। ५-६)

भेदनीति

और साथ ही यह भी कहा कि श्रीरामद्रोहीकी रक्षा हजारों शंकर, ब्रह्मा और विष्णु भी नहीं कर सकते।

सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहिं कोपी॥
संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही॥

(रा०च०मा० ५। २३। ७-८)

नीतिशास्त्र कहता है कि जो अपनेसे बल-बुद्धिमें बड़ा हो, उससे वैर न करें। शंकरावतार होनेके नाते हनुमान्‌जीके मनमें रावणके कल्याणकी भावना होना स्वाभाविक ही है। शायद ही किसी गुरुने शिष्यके कल्याणके लिये इतनी चेष्टा की हो। शिष्य गुरुके चरणोंमें नत होकर शिक्षा ग्रहण करे, ऐसा वर्णन सभी शास्त्रोंमें किया गया है, पर यहाँ तो गुरुजी ही हाथ जोड़कर शिष्यको समझानेका प्रयत्न करते हैं।

हनुमान्‌जीके वार्तालापके ढंगका आधार शास्त्रीय है, विद्वत्तापूर्ण है और नीतिपूर्ण है। उन्होंने रावणका रोग पकड़ लिया और उसे 'तामसिक अभिमान' छोड़नेके लिये कहा—

मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।

तुम मोहग्रस्त हो। इस मोहका परिणाम यह हुआ कि तुम्हारे अन्त:करणमें घोर अभिमान हो गया है। इसे दूर करनेके लिये मैं तुम्हें दवा दे रहा हूँ—

भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान॥

(रा०च०मा० ५। २३)

हनुमान्‌जीने रावणको राम, रघुनायक, कृपासिन्धु, भगवान्‌का भजन करनेका उपदेश दिया। अभिप्राय यह है कि यदि तुम ज्ञानी हो तो रामका, उपासक हो तो रघुनायकका, भक्त हो तो कृपासिन्धुका और यदि कर्मकाण्डी हो तो भगवान्‌का भजन करो। श्रीरामका भजन सबके लिये है, लेकिन अहंकारी और मोहग्रस्त रावणको यह उपदेश नहीं भाया।

अगर दवासे बीमारी ठीक नहीं हुई तो शल्य-चिकित्सा करनी पड़ती है। भगवान् श्रीरामका हनुमान्‌जीको भेजनेमें यही उद्देश्य था।

रावण जनकनन्दिनीका हरण करनेके लिये सोनेके मृगका सहारा लेकर उनको सोनेकी लंकामें रखता है। इसका तात्पर्य है कि रावण सीताजीको सोनेके प्रलोभनके माध्यमसे पाना चाहता है। हनुमान्‌जीका वर्णन करते हुए कहा गया—***'अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं'*** एक ओर विशाल स्वर्ण पर्वताकार सामने है और दूसरी ओर चार कोस सोनेकी लंका है। यहाँपर मानो स्वर्णकी परीक्षा हो रही है। गोस्वामी तुलसीदासजीने यहाँपर सोनेके परीक्षणकी विधिकी ओर संकेत किया है और वह विधि है—'जलाना'। दोनोंपर जब अग्निका प्रयोग

किया गया तो लंका जलकर खाक हो गयी और हनुमान्‌जी ज्यों-के-त्यों चमकते रहे—

मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा॥

(रा०च०मा० ५। २८। ४)

मानो संकेत था कि रावण—तुम लोभके स्थानपर प्रेमका स्वर्ण स्वीकार करो। इस प्रकार हनुमान्‌जीने रावणको उपदेशके द्वारा तथा क्रियाके द्वारा समझानेका प्रयत्न किया, पर रावण इतना विचित्र है कि रंचमात्र भी प्रभावित नहीं हुआ।

मन्दोदरी रावणकी पट्टरानी थी। वह राजकार्यमें भी भाग लेती थी। हनुमान्‌जीद्वारा लंका जलानेके पश्चात् राक्षस भयभीत रहने लगे थे। दूतियोंसे समाचार सुनकर कि निसिचरकुल अब उबरता नहीं दिखायी देता, मन्दोदरी बहुत व्याकुल हुई। उसे अहसास हुआ कि रावण अनीतिपर तुला हुआ है। स्त्रियोंका प्रभाव पुरुष और वह भी कामीपर, एकान्तमें अधिक पड़ता है। अत: एकान्तमें हाथ जोड़कर पतिके चरणोंसे लगकर नीतियुक्त वाणीसे बोली—हे कान्त! भगवान्‌से वैर छोड़ो और मेरा कहना अत्यन्त हितकर जानकर हृदयमें धारण करो—

रहसि जोरि कर पति पग लागी। बोली बचन नीति रस पागी॥
कंत करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हियँ धरहू॥

(रा०च०मा० ५। ३६। ५-६)

'कंत करष हरि सन परिहरहू।' कहकर मन्दोदरीने सामनीतिका प्रयोग किया। उसके पश्चात् भेदनीतिसे उसने रावणको समझाया कि जिनके दूतका कार्य स्मरणसे राक्षसियोंके गर्भ गिर जाते हैं, कहीं ऐसा न हो कि डरे हुए निशाचर उधर जाकर मिल जायँ।

समुझत जासु दूत कइ करनी। स्त्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी॥

(रा०च०मा० ५। ३६। ७)

मन्दोदरीने दामनीतिसे रावणको समझाया—हे कंत! यदि भला चाहते हो तो मन्त्रीको बुलाकर सीताजीको भेज दो।

तासु नारि निज सचिव बोलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई॥

(रा०च०मा० ५। ३६। ८)

फिर भयनीतिसे युक्त शब्दावलीमें मन्दोदरीने रावणसे कहा—'तुम्हारे कुलरूपी कमलवनको नष्ट करनेके लिये सीता शीतकालकी रात्रिके समान आयी है अर्थात् जैसे तालाबमें कमल खिले रहते हैं, वैसे ही लंकामें निशाचर प्रसन्न रहते हैं और जैसे जाड़ेकी रात्रि कमलका नाश करती है, वैसे ही सीताजी तुम्हारे कुलका नाश करनेवाली हैं। हे नाथ! बिना सीताजीको दिये शम्भु और ब्रह्माके भी करनेसे तुम्हारा भला नहीं हो सकता अर्थात् आपका हित इसीमें है कि मेरा कहा मानें, दूसरा कोई आपका हित नहीं कर सकता।'

तव कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें। हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें॥

(रा०च०मा० ५। ३६। ९-१०)

रावण मोहरूपी मनका प्रतीक है। मन्दोदरी बुद्धिकी प्रतीक है। बुद्धिका काम मनको समझाना है, किंतु मन बुद्धिकी न सुने और स्वयं ही स्वामित्वके गर्वमें चूर रहे तो बुद्धि क्या करे? जहाँ पति पत्नीकी हितकारी बातको भी न सुने तो उस घरकी दशा निश्चित लंकाके समान ही है। मन्दोदरी-जैसी समर्पित पत्नीद्वारा समझाये जानेपर भी रावण उसकी बातोंको हँसीमें उड़ा देता है। मन्दोदरी हृदयमें चिन्ता करने लगी कि पतिपर विधाता प्रतिकूल हो गये।

मंदोदरी हृदयँ कर चिंता। भयउ कंत पर बिधि बिपरीता॥

(रा०च०मा० ५। ३७। ६)

मन्दोदरी रावणको प्रताड़ित करते हुए कहती है—जिसने मारीचको बिना फलके बाणसे समुद्रके पार फेंककर विचलित कर डाला, ताड़काको मार दिया, शिवजीके धनुषको तोड़कर सबको सुख दिया और फिर चौदह हजार राक्षसोंसहित खर-दूषणको यमलोक भेज दिया, उसे तूने तब भी नहीं पहचाना। हे स्वामिन्! मैं जो सलाह देती हूँ, सो सुनो। भगवान्‌से विमुख होकर भला बालिने भी कौन फल पाया? तुम्हारे बीसों बाहु और दसों सिर तो तभी नष्ट हो गये, जब तुमने शिवजीके स्वामीसे वैर किया।

रे नीच! मारीचु बिचलाइ, हति ताड़का,
भंजि सिवचापु सुखु सबहि दीन्ह्यो।
सहस दसचारि खल सहित खर-दूषनहि,
पैठै जमधाम, तैं तउ न चीन्ह्यो॥
मैं जो कहौं, कंत! सुनु मंतु भगवंतसों
बिमुख ह्वै बालि फलु कौन लीन्ह्यो।
बीस भुज, दस सीस खीस गए तबहिं जब,
ईसके ईससों बैरु कीन्ह्यो॥

(कवि० लंकाकाण्ड १८)

रावण यह कहकर कि सत्य ही स्त्रियाँ स्वभावसे डरपोक होती हैं, अधिक स्नेह दर्शाकर सभामें चला गया। ज्यों ही सभामें बैठा तो उसे समाचार मिला कि श्रीरामकी सारी सेना समुद्र पार करके आ गयी है। उसने मन्त्रियोंसे उचित राय माँगी कि अब क्या करना चाहिये? वे सब हँसे और फिर कहने लगे कि आपने देवों और राक्षसोंको जीता है, जिसमें कुछ श्रम नहीं हुआ। फिर मनुष्य और वानर किस गिनतीमें हैं!

जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माहीं॥

(रा०च०मा० ५। ३७। ९)

किसीको ठीक परामर्श देना भी सहायता और हित करना ही होता है, किंतु परामर्श देनेवालेके मनमें भय और आशा नहीं होनी चाहिये। इच्छुक और लोभी व्यक्ति तो चाटुकारिता ही कर सकता है। यह आदत अत्यन्त विनाशकारी होती है। जहाँ दोषोंका ईंधन होता है, वहीं तो पापोंकी अग्नि प्रज्वलित होती है, जो व्यक्तिको जलाकर भस्म कर देती है। हम पापके फलसे डरते हैं, किंतु दोषोंको दूर नहीं करना चाहते।

गोस्वामी तुलसीदासजीने इसीलिये कहा है कि—

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास॥

(रा०च०मा० ५। ३७)

यदि मन्त्री भय और आशाके साथ सलाह दें तो राज्यका नाश हो जाता है। यदि वैद्य रोगीके कहनेके अनुसार दवा देने लगे तो शरीरका नाश हो सकता है और गुरु यदि शिष्यके अनुसार चले तो धर्मका नाश हो जाता है। स्वार्थमयी एवं पापमयी वृत्ति अहंकारी व्यक्तिके मनको झूठा प्रोत्साहन देती जाती है, लेकिन मूलमें दीमककी तरह उसके मनको खोखला कर देती है तथा विनाशके कगारपर लाकर खड़ा कर देती है।

रावणके लिये वही संयोग बन गया। मंत्री उसको सुना-सुनाकर प्रशंसा कर रहे हैं। ठीक अवसर जानकर विभीषण आये और भाईके चरणोंमें सीस झुकाकर आसनपर बैठ गये।

रावणने कहा—'भाई! तुम भी सलाह दो।' तो अनुशासन प्राप्त करनेपर, कहनेपर बोले। बिना कहे सभामें बोलना नहीं चाहिये। सो विभीषण बोले—'मैं अपनी बुद्धिके अनुसार आपके भलेकी बात कहता हूँ। हे स्वामी! जो व्यक्ति अपना कल्याण, सुन्दर यश, सुबुद्धि, शुभ गति और नाना प्रकारके सुख चाहता हो, उसके लिये यही उचित है कि वह दूसरेकी स्त्रीका सुन्दर ललाट भी भादों सुदि चौथके चन्द्रमाके समान समझे। उसका मुख न देखे।'

जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाईं॥

(रा०च०मा० ५। ३८। ५-६)

अत: विभीषणकी रावणको यह सम्मति कि वह 'पराई स्त्रीपर अपना अधिकार न समझे और अशुभ जानकर उसके स्वामीको लौटा दे', सर्वथा शास्त्रानुकूल, नीतिके अनुसार और हितकारी है। विभीषण निश्चित रूपसे सात्त्विक गुणोंका रूप है। वह स्वयं श्रीरामका भजन करता है और रावणको काम, क्रोध, लोभका त्याग करके भजनकी प्रेरणा देता है। माल्यवन्त भी विभीषणको नीति-विभूषण कहता है।

तात अनुज तव नीति बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन॥

इस प्रकार रावणको हनुमान्जी, मन्दोदरी और विभीषण—सभीने समझाया, परंतु उनकी नीतिपूर्ण बातें न मानना ही उसके विनाशका कारण बना, जबकि श्रीरामने नीति-विभूषण विभीषणकी प्रत्येक बातका आदरपूर्वक समर्थन किया था और विजय प्राप्त की।

तुलसीके हनुमान्

(डॉ० श्रीआद्याप्रसादसिंहजी 'प्रदीप')

पवनपुत्र श्रीहनुमान्जी महाकवि तुलसीके परम अभीष्ट थे। आकुल-व्याकुल कवि तुलसीदासजीको हनुमान्जीने सहारा दिया था। हनुमान्की महान् कृपासे ही उन्हें श्रीरामके दर्शन हुए थे। भगवान् श्रीराम-लक्ष्मण दर्शन देनेके लिये राजकुमारके वेशमें आये, परंतु वे पहचान नहीं पाये। दूसरी बार चित्रकूटके घाटपर चन्दन घिसते समय भगवान् श्रीराम-लक्ष्मण बालक बनकर चन्दन लगवाने आये। वे तब भी चूके जा रहे थे। उसी समयपर हनुमान्जीने तोतेका रूप धारणकर पेड़पर बैठकर दोहा कहा—

चित्रकूट के घाट पर भइ संतन की भीर।
तुलसिदास चंदन घिसें तिलक देत रघुबीर॥

—इसे सुनकर उन्होंने श्रीरामको पहचाना और दर्शन पाया। जीवनभर उन्होंने श्रीरामको अपना अभीष्ट माना, परंतु ***'राम ते अधिक राम कर दासा'*** को भी स्वीकार किया। हनुमानबाहुककी रचनाकर अपने शारीरिक क्लेशोंसे मुक्ति पायी थी। तुलसीका हर ग्रन्थ प्रायः रामकथापर ही आधारित होता है। ग्रन्थोंमें जो गति प्रवाहित होती है, वह हनुमान्के सहारे ही आती है। हनुमान् भगवान् रामके परम प्रिय हैं। बाल्यकालमें एक दिन एक बन्दर नचानेवाला अयोध्यामें आया। उसके चले जानेपर रामने बन्दर लेनेके लिये जिद की। राजा दशरथ बन्दर मँगा-मँगाकर देने लगे। रामने सबको इनकार कर दिया। अन्तमें हनुमान्को लाया गया तो भगवान् रामने उन्हें बड़े प्रेमसे स्वीकार कर लिया। काफी दिनोंतक हनुमान्ने रामका मनोरंजन किया। अन्तमें पुनः मिलनेका वादा करके भगवान्ने हनुमान्को जाने दिया।

श्रीरामचरितमानसमें हनुमान्की भेंट रामसे उस समय होती है, जब राम-लक्ष्मण सीताकी खोजमें वन-वन भटक रहे थे। बालिके भयसे सुग्रीव हनुमान्के साथ ऋष्यमूक पर्वतपर रह रहे थे। उन्होंने पर्वतसे राम-लक्ष्मणको आते देखा। सुग्रीवको भय था कि बालिने किसीको भेजा तो नहीं है। अतः हनुमान्को सुग्रीवने विप्रवेशमें भेजा। हनुमान् जाकर प्रश्न करते हैं—

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥
कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी॥

(रा०च०मा० ४।१।७-८)

भगवान् रामने भी उत्तर दिया। हम कोसलके स्वामी राजा दशरथके पुत्र हैं। पिताकी आज्ञासे वनमें चले आये हैं। हमारे साथमें एक सुन्दर स्त्री थी, जिसे राक्षसोंने चुरा लिया है, हम उसीकी खोजमें वन-वन भटक रहे हैं। इतना सुनते ही हनुमान्को पुरानी बात याद आ गयी है—

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥
पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना॥
पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदयँ निज नाथहि चीन्ही॥
मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं॥

(रा०च०मा० ४।२।५—८)

हनुमान्जीने अपनी मूढ़ता—अज्ञानताका विस्तृत चित्रण किया और अपनेको माया-मोहमें विधिवत् लिप्त बताया। हनुमान्जी आश्वस्त होकर उनके चरणपर व्याकुल होकर लिपट जाते हैं—

अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई॥
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा॥

(४।३।५-६)

ऐसेमें हनुमान्ने सारी बात खुलकर भगवान् रामसे बताया। हे प्रभु! इस पर्वतपर कपिपति सुग्रीव रहते हैं, वे आपके भक्त हैं। वे बन्दरोंको भेजकर सीताका पता लगा देंगे। हनुमान् राम और लक्ष्मणको कन्धेपर बैठाकर कपिपति सुग्रीवके पास गये। भगवान्को पाकर सुग्रीव बहुत प्रसन्न हुए। हनुमान्जीने अग्निको साक्षी बनाकर राम और सुग्रीवकी मित्रता सुदृढ़ कर दी—

तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ॥

(रा०च०मा० ४।४)

सुग्रीवने सीताको खोजनेका पूर्ण आश्वासन दिया। उन्होंने यह भी बताया कि मैं मन्त्रियोंके साथ यहाँ बैठा था, उसी समय नभपथसे विलाप करती किसीके द्वारा ले जायी जाती हुई नारीने हम लोगोंको देखकर एक वस्त्रका

टुकड़ा यहाँ फेंक दिया था। सुग्रीवने वह वस्त्र लाकर श्रीरामको दिखाया। श्रीरामने वस्त्रको लेकर विषादका अनुभव किया। तत्पश्चात् भगवान् श्रीरामने मित्र सुग्रीवसे उस पर्वतपर रहनेका कारण पूछा। सुग्रीवने भाई बालिकी गाथाको बताया। प्रभु श्रीरामने मित्रके कष्टको दूर किया। बालिको मारकर सुग्रीवको राजा बना दिया। बालि-पुत्र अंगदको युवराज पदपर प्रतिष्ठित किया। सुग्रीवने हनुमदादि वानर वीरोंको भेजकर सीताकी खोज करायी।

सीताकी खोजमें प्रस्थित हनुमान्‌को बुलाकर भगवान् श्रीरामने अपनी अँगूठी देकर महनीय कार्य समर्पित किया। मार्गमें भूख-प्याससे त्रस्त-पस्त बन्दरोंको हनुमान्‌जीने बचाया। यथा—

गिरि ते उतरि पवनसुत आवा। सब कहुँ लै सोइ बिबर देखावा॥
आगें कै हनुमंतहि लीन्हा। पैठे बिबर बिलंबु न कीन्हा॥

(रा०च०मा० ४। २४। ७-८)

वहाँ ध्यानमग्न तपस्विनीको देख सभी भालू, बन्दरोंने भूख-प्याससे त्रस्त होकर आकर प्रणाम किया। उसने बन्दरोंको कार्यमें पूर्ण सफलताकी कामना कर अपने तप-बलसे सिन्धु-तटपर पहुँचा दिया।

अब सामने यह प्रश्न उठ रहा है कि सिन्धुपार जाकर लंकामें सीताकी खोज कौन करेगा? अनेक महारथियोंने अपनी असमर्थताको बताया। उस समय जामवन्तने हनुमान्‌जीसे कहा—

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेहु बलवाना॥
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥
राम काज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्बताकारा॥

(रा०च०मा० ४। ३०। ३—६)

जामवन्तके सुन्दर वचन सुनकर हनुमान्‌जी लंका जानेको तत्पर हो गये। उन्होंने सबसे निवेदन किया कि मैं रामकाजके लिये जा रहा हूँ। जबतक मैं वापस नहीं आता, तबतक आप सब सिन्धुतटपर मेरी प्रतीक्षा कीजिये।

मैनाक पर्वतने हनुमान्‌जीको विश्राम देना चाहा, परंतु रामकार्यमें तत्पर हनुमान्‌जीको उस कार्यके अतिरिक्त कुछ नहीं सूझता। यथा—

हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥

(रा०च०मा० ५। १)

देवताओंद्वारा सम्प्रेषित सुरसा व्यवधानके रूपमें उपस्थित हुई। उसने हनुमान्‌जीके अनेक निवेदन अनसुने कर दिये। यहाँ हनुमान्‌जीकी परम प्रवीणता और चतुराई देखनेको मिलती है। अन्तमें सुरसाको कहना पड़ा—

राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान॥

(रा०च०मा० ५। २)

हनुमान्‌जी द्रुतगतिसे आगे बढ़ते हैं। यहाँ भी एक व्यवधान उपस्थित होता है। छायाग्राहीने हनुमान्‌जीको खींचा। परम प्रवीण हनुमान्‌जीने उसके कपटको पहचान लिया। उन्होंने सत्वर अपना कार्य किया—

ताहि मारि मारुतसुत बीरा। बारिधि पार गयउ मतिधीरा॥

(रा०च०मा० ५। ३। ५)

सुरसा और छायाग्राहीपर विजय प्राप्तकर हनुमान्‌जीने आगे प्रस्थान किया। वहाँ जाकर लंकाकी अभिरक्षा व्यवस्थाका अवलोकनकर विचार किया—

पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार॥

(रा०च०मा० ५। ३)

परम लघुरूप धारण करनेपर भी रक्षिकाने हनुमान्‌जीको

नगरमें प्रवेश करते देख लिया। उसने हनुमान्‌जीको फटकारकर कहा—

जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा॥

(रा०च०मा० ५।४।३)

कपिप्रवर हनुमान्‌ने उसे एक मुक्का हन दिया। उसका हाल बेहाल हो गया। वह खूनका वमन करते हुए पृथ्वीपर गिर गयी। फिर सँभलकर उठी और हनुमान्‌जीसे निवेदन किया कि जब मैं ब्रह्माके यहाँसे चलने लगी थी तो मुझसे ब्रह्माने कहा था कि यदि कभी कपिके मारनेसे तुम विकल हो गयी तो समझ लेना कि निशिचरकुलका संहार हो जायगा—

जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंचि कहा मोहिं चीन्हा॥
बिकल होसि तैं कपि के मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे॥
तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता॥
तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

(रा०च०मा० ५।४।६—८, ५।४)

हनुमान्‌जीने नगरमें प्रवेश किया। कपिने अपने हृदयमें भगवान् श्रीरामको धारणकर रावणके भवनमें प्रवेशकर खोजना शुरू किया। हनुमान्‌जीने खूब खोजा, देखा अनगिनत योद्धा सोये हुए थे। अपने भवनमें रावण भी निद्रा-निमग्न मिला। आगे जानेपर हनुमान्‌जीको रामनाम-अंकित एक भवन मिला। उन्हें आश्चर्य हुआ कि यहाँ कोई सज्जन कैसे अपना जीवन गुजारता है? ऐसे समयमें ही विभीषण जागकर राम-राम करने लगे। विप्र-वेशमें हनुमान् विभीषणसे मिले, अनेक वार्ताएँ हुईं। युक्ति-युक्त संकेतसे हनुमान्‌जी माँ सीताके पास आते हैं—

निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन॥

(रा०च०मा० ५।८)

उस समय वहाँ रावण भी आता है। उसने माँ सीताको समझाया और डरवाया। हनुमान्‌जी परम चतुर धैर्य धारणकर सब सुनते रहे। अन्तत: रावण वापस लौट गया और यहाँ अनेक राक्षसियोंने सीताजीको डराना आरम्भ किया। त्रिजटाने अपना स्वप्न भी सुनाया। अत्यन्त विरहकी स्थितिमें जब माँ सीता अशोकवृक्षसे जल मरनेके लिये आग माँगने लगीं तो वीर चतुर हनुमान्‌जीने रामप्रदत्त अँगूठीको गिरा दिया। देखते ही माँ सीता हर्ष-विषादमें डूब गयीं। इस समय हनुमान्‌जीने—

रामचंद्र गुन बरनैं लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥
लागीं सुनैं श्रवन मन लाई। आदिहु तें सब कथा सुनाई॥

(रा०च०मा० ५।१३।५-६)

माँ सीताके बुलानेपर हनुमान्‌जी छोटे बन्दरका रूप धर प्रस्तुत हुए। उन्हें देखकर विस्मित माँ सीताको हनुमान्‌जीने परिचय दिया—

राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी॥

(रा०च०मा० ५।१३।९-१०)

भगवान् श्रीरामका अपना परिचय हनुमान्‌जीने समझाया। माँ सीताको विश्वास हो गया। भगवान् श्रीरामका सम्यक् सन्देश हनुमान्‌जीने कह सुनाया और आश्वासन भी दिया कि शीघ्र ही यहाँ आकर निशिचरोंको मारकर तुम्हें ले जायँगे। हनुमान्‌जीने भूख शान्ति करनेके निमित्त माताजीसे आदेश लेकर फल खाना, पेड़ोंको तोड़ना और रक्षकोंको मारना आरम्भ कर दिया। अन्तत:

मेघनादद्वारा ब्रह्मास्त्रमें बाँधकर वे रावणके दरबारमें ले

जाये गये। वहाँ कपिको पूँछहीन करके भेजनेके लिये कपड़ा और तेलसे सराबोर कराकर आग लगा दी गयी। कपिने विशालरूप धरकर पूरी लंकाको जलाकर खाक कर दिया और सीताजीसे मिलकर पुनः वापस बन्दरोंके पास आ गये। हनुमान्‌जी सबको साथ ले भगवान् श्रीरामके पास आये। भगवान् श्रीरामने कपिसे कहा—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥
कपि उठाइ प्रभु हृदयँ लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा॥
प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥

(रा०च०मा० ५।३२।५-७, ३३।४, २)

गोस्वामी तुलसीदासके हनुमान् परम चतुर, भक्त एवं बलकी अपार राशि हैं। पूरबमें उदित चन्द्रमाको देखकर भगवान् श्रीरामने पूछा—चन्द्रमाकी छाया क्या है? अनेक लोगोंने विभिन्न उत्तर दिये, परंतु हनुमान्‌का उत्तर बड़ा ही सटीक और भक्तके अनुकूल है—

कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास॥

(रा०च०मा० ६।१२क)

अंगदप्रेषित रावणके मुकुट नभसे दिखायी दिये। सभी सशंकित हो गये। दिनमें कैसे लूक टूटने लगा। वीर हनुमान्‌ने लपककर उन्हें पकड़कर भगवान् श्रीरामके पास रख दिया—

तरकि पवनसुत कर गहे आनि धरे प्रभु पास।
कौतुक देखहिं भालु कपि दिनकर सरिस प्रकास॥

(रा०च०मा० ६।३२क)

मेघनाद और लक्ष्मण-युद्धके समय वीरघातिनी लक्ष्मणके हृदयमें लगी, वे बेहोश हो गये। हनुमान्‌जीने श्रीरामके पास लक्ष्मणको रखा। सुषेणवैद्य-निर्देशित बूटी लानेके समय हनुमान्‌जीके अतिरिक्त किसीमें सामर्थ्य नहीं थी। यह हनुमान्‌जीके बूतेकी ही बात थी कि मार्गमें व्यवधान डालनेवाले राक्षसको मारकर तत्काल बूटीवाले पर्वतको ही लेकर लंकामें आ जाते हैं। हनुमान्‌जीने ही संजीवनी-बूटी लाकर रामके असह्य विषाद और लक्ष्मणके प्राण बचाये—

हरषि राम भेटेउ हनुमाना। अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना॥
तुरत बैद तब कीन्हि उपाई। उठि बैठे लछिमन हरषाई॥

(रा०च०मा० ६।६२।१-२)

युद्धमें अनेक स्थलोंपर हनुमान्‌ने अपनी वीरतासे राक्षसोंको मारा और उनके यज्ञादिको नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। विजयके बाद भगवान् श्रीरामने पवनपुत्र हनुमान्‌को अपने परम सहायकके रूपमें ही सदा प्रयोग किया। जहाँ-जहाँ राम जाते थे, वहाँ हनुमान्‌जीको अवश्य रखते थे। लंकासे वापस आते समय भरतको सान्त्वना देनेके लिये हनुमान्‌जीको प्रथम ही भेज दिया। यहाँ भरतकी दशा विचित्र थी—

राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥
बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्त्रवत नयन जलजात॥

(रा०च०मा० ७।१क, ख)

हनुमान्‌जीने भरतको बताया युद्धमें शत्रुको परास्त करके भगवान् श्रीराम अयोध्याको आ रहे हैं। भरतका सारा दुःख दूर हो गया। प्यासेको जैसे पानी नहीं अमृत मिल गया। भरत आनन्दमग्न हो गये और पूछने लगे—***'को तुम्ह तात कहाँ ते आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए॥'*** (रा०च०मा० ७।२।७)

हनुमान्‌जीने उत्तर दिया—

मारुत सुत मैं कपि हनुमाना। नामु मोर सुनु कृपानिधाना॥
दीनबंधु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर॥

(रा०च०मा० ७।२।८-९)

हनुमान्-चरित अगाध है। भगवान् श्रीरामको हनुमान् परम प्रिय हैं। श्रीरामचरितमानसमें जितना कठिन कार्य है, सब हनुमान्‌जीद्वारा पूर्ण होता है। माँ सीताकी खोज, लक्ष्मणके प्राण बचाना, लंकामें संत्रास पैदा कर देना आदि अनेक मानवेतर कार्य हैं, जो हनुमान्‌जीने किये। अहिरावण-वध, राम-लक्ष्मणकी रक्षा-सरीखे अनेक कार्य हनुमान्‌जीने किये। इनका जितना भी यशोगान हो उतना भी कम ही है। आज भी हनुमान्‌को जो दर्दभरे हृदयसे पुकारता है, उसकी रक्षा हनुमान्‌जी अवश्य करते हैं। कितने भी संकटमें कोई हो, हनुमान्‌का नाम उसे त्राण देता है।

सन्तचरित—

पं० रामाधार मिश्र—एक विलक्षण सन्त

(डॉ० श्रीरामशंकरजी द्विवेदी, एम०ए०, पी-एच०डी०)

भारत सन्तोंकी भूमि है। एक सिद्ध महात्मा अपने सत्संगके दौरान कहा करते थे कि पृथ्वी निर्बीज नहीं है। यहाँ एक-से-एक विलक्षण सन्त होते रहे हैं। यहाँ मैं जिन महात्माके उपदेशों और उनके कुछ विलक्षण प्रसंगोंका उल्लेख कर रहा हूँ, इनका नाम पं० रामाधारजी मिश्र था और इन्होंने अपना शरीर १९४५ ई० के नवम्बर मासमें छोड़ा था। ये एक ऐसे परिवारमें जनमे थे, जिसमें उनसे पहले पाँच सिद्ध सन्त पैदा हो चुके थे। पं० रामाधारजी मिश्र जब १६-१७ वर्षके थे, तभी उन्हें नर्मदातटवासी सिद्ध सन्त स्वामी वासुदेवानन्द सरस्वतीसे दीक्षा प्राप्त हो गयी थी। उनके भतीजे पं० शिवबल्लभजी मिश्र बताया करते थे कि स्वामी वासुदेवानन्दजीको दीक्षा साक्षात् दत्तात्रेयभगवान्‌ने प्रकट होकर नर्मदातटपर दी थी और चच्चा (पं० रामाधारजी)-को दीक्षा युवावस्थामें ही स्वामी वासुदेवानन्दजीसे मिल गयी थी। चच्चा परमार्थ और लोक व्यवहार दोनोंमें ही सफल थे। शिक्षा प्राप्त करनेके बाद वे राजकीय इण्टर कॉलेजमें शिक्षक हो गये थे। जिन्होंने उन्हें देखा है (जैसे पं० शंकर दयाल शास्त्री—अब स्वर्गीय) वे कहा करते थे कि उन्हें देखते ही राहगीर खड़े हो जाते थे, प्रणाम करते थे और वे कहा करते थे (अपनी छातीपर हाथ रखकर) जीवन थोड़ा है, इसे मत भूलो, सब कुछ नश्वर है और आगे बढ़ जाते थे। उनके चेहरेपर अपूर्व तेज रहता था और वे जैसे कहीं खोये हुए हों—उन्हें देखकर ऐसा भान होता था। पं० शिवबल्लभजी स्वयं एक सिद्ध सन्त थे। वे माँ पीताम्बराके उपासक थे। उन्होंने बताया एक दिन मैंने चच्चा (पं० रामाधारजी मिश्र)-से कहा कि मैंने जीवनका सब कुछ देख लिया है (उस समय शिवबल्लभजीकी उम्र २६ वर्ष की थी। उन्होंने बी०ए०, एल-एल०बी० कर लिया था और घरका काम-काज देख रहे थे। वे विवाहित थे और उनके एक पुत्री तथा दो पुत्र हो चुके थे।), अब मैं भजन करना चाहता हूँ। उन्होंने कहा—'बेटा! इससे अच्छा संकल्प और क्या हो सकता है। तुम्हें जो इष्ट पसन्द हो, उसकी उपासना करना प्रारम्भ कर दो।' शिवबल्लभजीने मुझे बताया, चच्चा उस समय रिटायर हो चुके थे, उनकी वृद्धावस्था थी फिर भी उन्होंने कहा कि तुम भगवत्-आराधना करो और कोई होता तो अपनी वृद्धावस्थाका उल्लेखकर कहता कि पहले परिवारको देखो और थोड़ा-बहुत भजन करते रहो। पर चच्चाने मुझे परमार्थकी ओर ही प्रेरित किया। पं० रामाधार मिश्रने कभी किसीको शिष्य नहीं बनाया। उनका कहना था कि मैं अभी शिष्य ही नहीं बन सका हूँ; क्योंकि शिष्य बनानेपर शिष्यका पूरा भार गुरुपर आ जाता है। इसलिये शिवबल्लभजीने दतियाके पीताम्बरा पीठके सिद्ध सन्त पीताम्बरा महाराजसे शाक्त मतकी दीक्षा ली थी, पर उनकी उपासना वाममार्गी नहीं थी।

मैं पं० शिवबल्लभजीके पास १९७६ ई० में गया था। उनके पास पहुँच सकना भी मेरे किसी पूर्वजन्मोंके पुण्योंका फल था; क्योंकि वे किसीसे मिलते नहीं थे। वे पूर्ण एकान्तसेवी और निरन्तर भजन करते-रहते थे। मेरी इच्छा पं० रामाधारजी मिश्रके जीवनपर एक लेख लिखने की थी। इसी प्रेरणासे मैं उनके पास गया था।

उस समय उनके नित्य सत्संगमें सिर्फ तीन व्यक्ति जाते थे, चौथा मैं था, जो एकदम नया था। जब मैंने उनसे चच्चा (पं० रामाधारजी मिश्र)-का जिक्र किया तब उन्होंने मुझे कई बैठकोंमें उनके जीवनकी कई विलक्षण घटनाओंको सुनाया। ये घटनाएँ किसी-न-किसी प्रसंगमें सुनायी गयी थीं। उनमेंसे कुछ प्रसंग मैं कल्याणके पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ। शास्त्रोंका कहना है कि सन्तोंके चरित्रोंके चिन्तनसे मनकी मैल धुलती है और पुण्यकी प्राप्ति होती है।

पं० शिवबल्लभजीके सत्संगमें एक सोनी आते थे। वे उस समय अस्सी वर्षसे ऊपरके रहे होंगे और चच्चाके सत्संगी थे। शिवबल्लभजी कहा करते थे— यहाँ आनेकी उनकी एक ही 'क्वालिफिकेशन' है कि ये चच्चाके सत्संगमें आते रहे हैं। हालाँकि इन्होंने भजन आदि कुछ भी नहीं किया है। यह सुनकर सोनीजीकी आँखोंमें आँसू आ जाते थे। एक दिन मैंने उनसे पूछा, आप चच्चाके बारेमें कोई घटना बताइये। तब उन्होंने जिस विलक्षण घटनाका जिक्र किया, वह इस प्रकार है—सोनीने बताया कि एक दिन मैंने महाराजजीसे पूछा कि भगवान्के दर्शन होते हैं, तब कैसा लगता है? यह सुनते ही चच्चाका पूरा शरीर रोमांचसे भर गया और वे एकदम मौन हो गये। उनका पूरा शरीर लहरा रहा था। उसके कुछ क्षणों बाद उन्होंने रुँधे गलेसे कहा किसी दिन इसका उत्तर देंगे। यह कहकर वे पुन: ध्यानमें डूब गये। शामसे लेकर ९-१० बजे राततक उनकी बैठकमें यह सत्संग चला करता था। उसमें नित्य आनेवाले लोगोंमें रमेशचन्द्र श्रीवास्तव (अब स्वर्गीय)-के फोटोग्राफर पिता, फोटोग्राफर गांधीराम फोकसजी, श्रीश्यामसुन्दर पुरवारके पिता, श्रीबालमुकुन्द शास्त्री आदि आया करते थे। सत्संग समाप्त हो जानेके बाद सभी अपने घर चले जाया करते थे। उस दिन मैं भी अपने घर चला गया। कुछ दिन बाद मुझे एक कामसे जालौनके पास अपने गाँव सुढ़ारसे आकर जब मैं जालौनके पड़ाव (वर्तमानमें देवनगर चौराहा)-पर इक्केमें सवार हुआ और आसपास देख ही रहा था कि एकाएक सामनेका पूरा परिदृश्य बदल गया। सोनीने बताया कि सामनेके सारे दृश्य पदार्थ, वृक्ष, व्यक्ति सब विलुप्त हो गये और मेरी आँखोंके सामने सिर्फ सफेद-सफेद प्रकाशके अलावा कुछ भी नहीं था। मेरे साथ जो व्यक्ति बैठे थे, कहीं उन्हें मेरी इस दशाका आभास न हो जाय इसलिये मैंने साफीसे अपना मुँह ढक लिया और आँखें बन्द कर लीं। चारों ओर प्रकाशके अलावा स्थूल जगत्का चिह्न भी नहीं था। मैं घबड़ा गया, मैं सोचने लगा, पता नहीं मेरे दिमागको क्या हो गया है, क्या मैं पागल हो गया हूँ? पर मेरा पूरा शरीर रोमांचसे भरपूर था और मुझे भय और आनन्द दोनोंका अनुभव हो रहा था। शामको मैं जब महाराजजीके सत्संगमें गया, तब मैंने इस घटनाका जिक्र किया तो वे ध्यानमग्न हो गये। बादमें उन्होंने कहा कि अगर तुम्हें कोई आँख बन्द करते ही लन्दन पहुँचा दे, तो तुम लन्दन पहुँच तो जाओगे, पर तुम्हें यह पता नहीं चलेगा कि आखिर तुम वहाँ पहुँचे कैसे। इसी तरह तुम्हें भगवत्-अनुभूतिका साक्षात्कार कराया जा सकता है, किंतु जबतक तुम अपने प्रयाससे उसे प्राप्त नहीं करोगे तबतक उसकी स्थायी अनुभूति नहीं हो सकती है। भगवत्कृपाके अलावा निजी पुरुषार्थ बहुत जरूरी है। यह कहकर वे चुप हो गये।

यह घटना सुनकर पं० शिवबल्लभजीने उनकी एक और घटनाका प्रसंग सुनाया। उन्होंने कहा—चच्चा गर्मियोंकी छुट्टियोंमें कुछ सत्संगियोंके साथ बिठूर गंगातटपर भजन करनेके लिये जाया करते थे। एक दिनका प्रसंग है कि काफी दिन चढ़ आया और चच्चा लौटकर नहीं आये। बिठूरमें उनका नित्य क्रम यह रहता था कि वे बाकी सत्संगियोंको भजन करनेका निर्देश देकर स्वयं गंगाके उस पार एकान्तमें भजन करने चले जाते थे और एक निश्चित समयपर वापस लौट आते थे। उस दिन उन्हें आनेमें काफी देर होते देखकर साथके सत्संगी घबड़ा गये। उनके मन नाना उद्वेगों और आशंकाओंसे भर गये। वे सोचने लगे कहीं महाराज समाधि न ले लिये हों।

कहीं कोई दुर्घटना न घट गयी हो। इन्हीं आशंकाओंसे भरे गंगाके उस पार अनेक स्थानोंपर खोजनेके बाद जब उन्हें उनका कहीं पता नहीं चला, तब सभीने यह तय किया कि चलो, उन महात्माजीसे पूछा जाय तो गंगामें मचान बनाकर रह रहे हैं। असलमें उन दिनों बिठूरमें गंगामें मचान बनाकर परम संत देवरहा बाबा अवस्थान कर रहे थे। वे उन दिनों मौन रहते थे और उनके मचानके नीचे एक स्लेट तथा वर्तिका रखी रहती थी। वह रस्सीसे बँधी रहती थी, जिसका एक छोर देवरहा बाबातक गया हुआ था। जो भी अपनी शंका या प्रश्न उसपर लिखता था, उसका उत्तर बाबा उसी स्लेटपर लिखकर नीचे भेज देते थे। उन सत्संगियोंने उसी स्लेटपर अपनी शंका लिखकर भेजी। तत्काल उत्तर आया—आप जिन महात्माजीके बारेमें शंकाकुल होकर पूछ रहे हैं, शंकाकी कोई बात नहीं है। वे आज कुछ दूर भजन करने निकल गये हैं। थोड़ी देरमें आ जायेंगे। आप लोग बड़े सौभाग्यशाली हैं, जो उनके साथ रहते हैं। वे उस स्थितिको पहुँचे हुए हैं, जिस स्थितिमें पहुँचनेके लिये मुझे गंगामें मचान बनाकर रहना पड़ रहा है। देवरहा बाबाके इस कथनको पढ़कर उन संत्सगियोंको पं० रामाधारजीकी विलक्षणताका कुछ आभास हुआ। पं० शिवबल्लभजीने चच्चाके बारेमें मुझे एक और विलक्षण घटना सुनायी। ऊपर जिक्र किया गया है कि चच्चाके सत्संगमें एक श्रीवास्तव फोटोग्राफर आते थे। उन्होंने चच्चासे एक दिन प्रश्न किया कि महाराज देवताओं या अवतारोंके चित्रोंमें इनके मुखमण्डलके आसपास जो प्रकाशका घेरा रहता है, यह क्या होता है ? यह वास्तवमें होता है या कल्पनासे बना दिया जाता है। यह प्रश्न सुनते ही वे भगवत्-अनुभूतिमें मग्न हो गये। सिर हिलाते हुए बोले—किसी दिन इसका उत्तर मिल जायगा। ऊपर प्रसंग आ चुका है कि १९४५ ई० में उन्होंने देहत्याग कर दिया था। एक दिन रातमें उन्होंने अपनी पत्नी, जिन्हें वे 'राधा' नामसे पुकारते थे, कहा कि एक कम्बल ले आओ, फिर उन्होंने उस कम्बलको बिछाया और लेट गये। फिर एक चाबी देते हुए बोले कि इस आलमारीको खोलोगी तब उसमें एक और चाबी मिलेगी, जो तिजोरीकी होगी। कोई बात नहीं है, जरा घी लाओ और मेरी छातीमें मल दो। वे घी लेने चली गयीं, लौटकर आयीं तो देखा इनका शरीर शान्त हो चुका था। सबेरे तड़के ही यह समाचार पूरे शहरमें फैल गया। उनका विमान सजाया गया। उस समय अन्तिम दर्शनके लिये उनका शव रखा गया। फोटो लेने श्रीवास्तव और फोकसजी दोनों फोटोग्राफर आये। जब उन लोगोंने अपने-अपने फोटोग्राफ साफ किये तो यह चमत्कार देखनेको मिला कि जो फोटो श्रीवास्तवने खींचा था। उसमें पण्डितजीके मुखमण्डलके आसपास तेजोवलय बना हुआ था और फोकसजी के फोटोग्राफमें वैसा कुछ भी नहीं था। पण्डितजीका यह फोटो उनकी बैठकमें रखा रहता था, जिसे इन पंक्तियोंके लेखकने १९७६-७७ ई० में देखा था। पं० शिवबल्लभजीने मुझसे कहा था कि यह प्रभामण्डल असली है, किसी तकनीकसे बनाया हुआ नहीं। ऐसे थे पं० रामाधारजी मिश्र। नीचे उनके कुछ उपदेश कल्याणके पाठकोंके लिये दिये जा रहे हैं—

१. सच्चे भूखे और नंगोंको तलाश करके उन्हें रोटी और कपड़ा देकर सुखी करना।

२. सब बलाओंसे बचानेवाले मालिक रामको प्रेमसे पुकारना।

३. जो चीजें हमको यहीं छोड़ जानी पड़ती हैं, उनके लिये न तो झूठा बरताव करना और न लड़ना-भिड़ना, बल्कि आपसमें सदिच्छासे न्याय-नीतिके साथ मिलजुलकर बाँट लेना और काम चलाना।

४. जिससे हम सब उपजे हैं, जो हम सबोंमें भरा है, अपने सब काम उसीके लिये करते हुए चलें, तो हम उसको पहचान जायेंगे और वही हो जायेंगे; क्योंकि वास्तवमें हम वही हैं, इसीको सिद्धि कहते हैं, यही हमारा आनन्दमय अविनाशी अनन्त जीवन है।

हमारी आवश्यकता

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

अपने लिये अपनेसे भिन्नकी आवश्यकता कदापि नहीं हो सकती; क्योंकि भिन्नतासे एकता होनी सर्वदा असम्भव है, जिस प्रकार श्रवणने शब्दसे भिन्न कुछ नहीं सुना, नेत्रने रूपसे भिन्न किसी भी कालमें कुछ नहीं देखा तथा त्वचाने स्पर्शसे भिन्न, रसनाने रससे भिन्न एवं नासिकाने गन्धसे भिन्न किसीका अनुभव नहीं किया; क्योंकि श्रवणकी आकाश तथा शब्दसे ही, नेत्रकी अग्नि तथा रूपसे, त्वचाकी वायु तथा स्पर्शसे, रचनाकी जल तथा रससे और नासिकाकी पृथ्वी तथा गन्धसे ही जातीय एकता है और मन-बुद्धि आदि आन्तरिक इन्द्रियोंकी श्रवण-नेत्र आदि बाह्य इन्द्रियोंसे एवं प्रत्येक ज्ञानेन्द्रियकी प्रत्येक कर्मेन्द्रियसे जातीय एकता है। (यदि ऐसा न होता, तो आन्तरिक इन्द्रियोंके अनुरूप बाह्य इन्द्रियाँ चेष्टा न करतीं। आन्तरिक एवं बाह्य इन्द्रियोंका कारण-कार्य-सम्बन्ध है। प्रत्येक कार्य कारणमें विलीन होता है। कारण कार्यके बिना भी रह सकता है, किंतु कार्य कारणके बिना नहीं रह सकता। कारणमें स्वतन्त्रता अधिक होती है और कार्यमें गुणोंकी विशेषता होती है। कारण सूक्ष्म एवं अव्यक्त होता है और कार्य स्थूल एवं व्यक्त होता है। जो सूक्ष्म एवं अव्यक्त होता है, वह स्थूल एवं व्यक्तकी अपेक्षा अधिक विभु होता है।)

इसी कारण आन्तरिक इन्द्रियोंकी प्रेरणासे ही बाह्य-इन्द्रियाँ प्रवृत्त होती हैं; उसी प्रकार हमारी अपने निज-स्वरूप (नित्य-जीवन)-से एकता है, अत: हमारे लिये नित्य जीवनका अनुभव करना परम अनिवार्य है। शरीर विश्वसे भिन्न नहीं हो सकता और हमारी शरीरसे काल्पनिक सम्बन्धके अतिरिक्त जातीय एकता कदापि नहीं हो सकती (अर्थात् शरीर विश्वसे और हम विश्वनाथसे ही अभिन्न हो सकते हैं); क्योंकि हम स्वाभाविक यही कथन और चिन्तन करते हैं कि शरीर हमारा है; 'हम शरीर हैं' ऐसा कोई भी प्राणी कथन नहीं करता। (काल्पनिक सम्बन्ध भी दो प्रकारके होते हैं। भेद-भावका सम्बन्ध तथा अभेद-भावका सम्बन्ध। माना हुआ 'मैं' अभेद-भावका सम्बन्ध और माना हुआ 'मेरा' भेद-भावका सम्बन्ध है। अभेद-भावका सम्बन्ध केवल अपनी स्वीकृतिके आधारपर जीवित रहता है और भेद-भावका सम्बन्ध माने हुए सम्बन्धके अनुरूप चेष्टा करनेपर प्रतीत होता रहता है। प्रतीति निज सत्ताके बिना किसी और की सत्ताके आधारपर भी किसी कारणवश हो सकती है, जैसे मृगतृष्णाका जल)।

जिस प्रकार प्रत्येक मित्र अपने मित्रके दु:ख-सुखसे मैत्री सम्बन्धके कारण दुखी-सुखी होकर अपनेको दुखी-सुखी समझने लगता है, उसी प्रकार हम शरीरके सुख-दु:ख आदि स्वभावको अपनेमें आरोपित करने लगते हैं, किंतु हमारी स्वाभाविक अभिलाषा शरीर-सम्बन्धसे पूर्ण नहीं हो पाती, अत: हमको अपने लिये अपने प्रेममात्र अर्थात् नित्य जीवनकी आवश्यकता शेष रहती है। उसी आवश्यकताकी पूर्तिके लिये हमको अनित्य जीवनसे भिन्न नित्य जीवनकी ओर जाना अनिवार्य हो जाता है।

अब हम अपने नित्य जीवनको कैसे जानें? यह प्रश्न स्वाभाविक उत्पन्न होता है। यद्यपि प्रत्येक प्राणी अपनी स्वीकृति करता है, परंतु अपने वास्तविक निज स्वरूप (नित्य जीवन)-को जाननेसे इनकार करता है, यह कैसे आश्चर्यकी बात है! स्वाभाविक अभिलाषासे भिन्न अभिलाषीका निज-स्वरूप कुछ नहीं हो सकता। अब विचार यह करना है कि हमारी स्वाभाविक अभिलाषा क्या है? प्रत्येक प्राणी अपनेमें किसी प्रकारकी कमी रखना नहीं चाहता; क्योंकि कमीका अनुभव होते ही दु:खका अनुभव होता है। यद्यपि दु:ख किसी भी प्राणीको प्रिय नहीं, फिर भी अपने-आप आता है। जो अपने-आप आता है, उससे हमारा हित अवश्य होगा, यदि उसका सदुपयोग किया जाय; क्योंकि यदि दु:ख न आता तो हम अस्वाभाविक अनित्य जीवनसे विरक्त नहीं हो सकते थे अथवा यों कहो कि हमारी स्वाभाविक अभिलाषा जो अस्वाभाविक इच्छाओंद्वारा दबाकर निर्बल बना दी गयी थी, सबल न हो पाती। अत: दु:खकी कृपासे हम जाग्रत् हो जाते हैं। इस दृष्टिसे दु:ख आदरणीय अवश्य है। कोई भी प्राणी तबतक उन्नति नहीं कर सकता, जबतक उसे स्वयं अपनी दृष्टिसे अपनी कमीका अनुभव न हो। विचारशील प्राणी कमीका अनुभवकर उसका नितान्त अन्त करनेके लिये घोर प्रयत्न करते हैं, अत: हमको अपनी कमीका अन्त करनेके लिये अखण्ड प्रयत्न करना चाहिये।

कहानी—

आत्मीयता

(श्रीरामेश्वरजी टांटिया)

बात पुरानी है, परंतु बहुत पुरानी भी नहीं, क्योंकि चालीस-पचास वर्ष पहले ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने उन सेठजी को देखा था। उनका गाँव तो राजस्थानके शेखावाटी क्षेत्रमें था, परन्तु ज्यादातर वे रहते थे बम्बईमें। वहाँ बड़े पैमानेपर रूई और आढ़त वगैरहका उनका करोबार था।

वर्षमें एक बार गाँव जाते तो गरीब और जरूरतमन्दोंमें महीनों पहलेसे चर्चा हो जाती। गाँवके सैकड़ों व्यक्ति दो-चार कोस अगवानी करनेके लिये आते। सेठजी भी छोटे-बड़े सबको उनके नामसे सम्बोधित करके राजी-खुशीका हाल पूछते। इतने बड़े व्यक्तिसे अपना नाम सुनकर लोगोंके मनमें गुदगुदी-सी होती और अपनेको भाग्यवान् मानते।

जितने दिन वे वहाँ रहते, प्राय: रोज ही कभी हनुमान्‌जीके प्रसाद तो कभी सत्यनारायण भगवान्‌की कथा-उद्यापनके उपलक्ष्यमें गाँवके लोगोंको भोजनके लिये बुलाते रहते। ब्राह्मणोंको प्रति-घर एक रुपया, एक धोती और एक साड़ी भेंट दी जाती। यद्यपि आजके बड़े धनिकोंके अनुपातमें उनके पास रुपया कम था, परंतु उन दिनों चीजें बहुत सस्ती थीं और उनका मन बहुत ऊँचा था, इसलिये जितनी आय होती, उसका अधिकांश दान-धर्ममें खर्च कर देते।

उनके एकमात्र लड़केका विवाह देह (शेखावाटी-राजस्थान)-के गाँवमें ही होना निश्चित हुआ। उन दिनों छपे हुए निमन्त्रण-पत्र भेजनेकी प्रथा नहीं थी। नाई या ब्राह्मण गाँवके सब घरोंमें जाकर न्यौता-बुलावा देते थे, परंतु जो गोत्र-भाई थे, उनको न्यौता देने सेठजी स्वयं गये। वैसे उनके साथ पाँच-दस व्यक्ति तो हमेशा रहते ही थे।

संयोगसे उनकी बिरादरीमें एक घर ऐसा भी था, जिसके भुने हुए चने-मुरमुरेकी दुकान थी। लोगोंको बड़ा ताज्जुब हुआ, जब इतने बड़े सेठ एक गरीब भाईकी दुकानपर रखी हुई मूँजकी खाटपर बैठ गये।

दो-तीन बार निमन्त्रणकी याद दिलानेके बाद भी सामनेवाला व्यक्ति चुप रहा। शायद सेठजी उसकी चुप्पीका मतलब समझ गये। उन्होंने कहा, ''भाई, सुबहसे घर से निकला हुआ हूँ, प्यास लग रही है, थोड़ा-सा पानी मँगवा दो।'' दुकानदार जब लोटेमें पानी लेकर आया तो सेठजीने हँसकर कहा, ''तुम इतना तो जानते ही हो कि खाली पेट पानी पीनेसे से वायु हो जाती है, इसलिये थोड़ा-सा गुड़ और चने-मुरमुरे खाकर पानी पीऊँगा।'' उसने सहमते हुए ये दोनों चीजें लाकर दीं, जिन्हें खाकर बड़े प्रेमसे सेठजी ने पानी पीया।
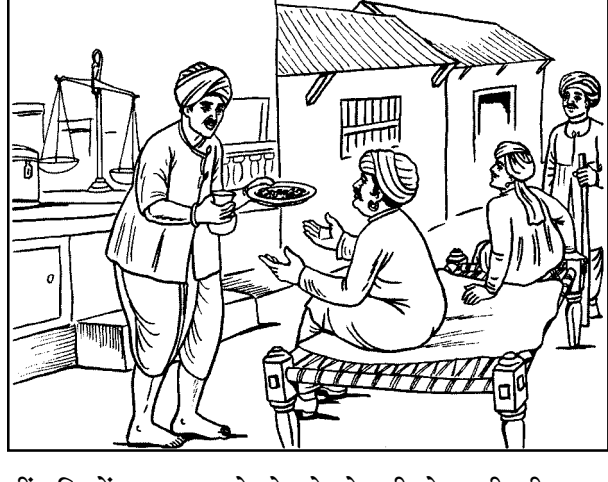
पास खड़े हुए लोगोंने देखा कि उस गरीबकी आँखोंसे हर्षकी अश्रुधारा बह चली। इतने बड़े व्यक्ति उसके दरवाजेपर बड़े प्रेमसे चना-मुरमुरा खा रहे थे। उसने हाथ जोड़कर कहा—''पूज्यवर, भोजमें शामिल होनेका मन तो नहीं था, क्योंकि मेरा ऐसा ख्याल था कि मेरे यहाँ काम पड़नेपर आप आयेंगे नहीं, परंतु मेरी धारणा गलत निकली, इसलिये मैं लज्जित हूँ और हम सपरिवार भोजनके लिये आपके यहाँ आयेंगे।''

कहा जाता है कि दावत चार-पाँच दिनोंतक चलती रही। आसपासके गाँवोंसे हजारों व्यक्ति आये। सबका यथायोग्य आदर-सत्कार किया गया।

विवाहके कामोंमें व्यस्त रहते हुए भी सेठजीके ध्यानमें यह बात आयी कि घर की भंगिन 'भूरी' की जगह काम करनेके लिये कोई दूसरी ही आ रही है। उसे बुलाकर पूछा तो कहने लगी—''आपकी भंगिनकी लड़कीके विवाहपर रुपयेकी अटक पड़ गयी थी,

इसलिये मैंने १०० रुपये उधार देकर आपका घर गिरवी रख लिया है।'' उसकी बात सुनकर सेठजी बहुत गुस्सा हुए और उन्होंने उसी समय 'भूरी' को बुला भेजा।

बम्बईसे बीसों दोस्त-मित्र शादीमें आये थे, उन सबके सामने ही सेठजीने कहा, ''भूरी चाची, भला तुमने यह गलत काम क्यों किया? जब-जब तुम्हारे यहाँसे समाचार गये, तब-तब मैंने तुम्हें बम्बईसे रुपये भिजवा दिये थे।'' भूरीने कुछ सहमते हुए-से स्वीकार किया कि पहली तीनों लड़कियोंके विवाहके रुपये तो आपके यहाँसे आ गये थे, उस समय आपके चाचा भी जीवित थे। इस समय कुछ जल्दीमें थी, अच्छा घर और वर मिल रहा था, इसलिये एक बार जीवणीसे रुपये उधार लेकर धापी (लड़की)-का विवाह कर दिया, उसीकी एवजमें आपका घर गिरवी रखना पड़ा, चार-छ: महीनोंमें छुड़ा लूँगी।

एक गरीब भंगिनके प्रति सेठजीद्वारा 'चाची' का सम्बोधन सुनकर उपस्थित लोगोंको आश्चर्य होना स्वाभाविक था और भूरी बिना झिझकके अपने स्वर्गीय पतिको सेठजीका चाचा बता रही थी।

जीवणी किसी तरह भी विवाहके पहले घर छोड़नेको तैयार न थी, किसी तरह समझा-बुझाकर उसे २०० रुपये देकर वापस भूरीको काम सौंप दिया गया।

आजकलकी मान्यताओं और तहजीबके आधारपर ये बातें अटपटी-सी लगेंगी, परंतु उस समय तनकी छुआछूत रखते हुए भी लोगोंके मनमें प्यार था, एक दूसरेके दु:ख-सुखमें शामिल रहते और आत्मीयताके साथ आपसमें सम्बोधन भी चाचा, ताऊ, मामा इत्यादिका था।

[प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]

धरतीका अमृत—गायका दूध

(श्रीबरजोरसिंहजी)

भारतीय इतिहासमें मुगल बादशाह अकबरका शासनकाल हिन्दू-मुसलिम-समन्वयका काल था। वह पहला मुसलमान बादशाह था, जिसने सभी धर्मोंमें सच्चाईका अनुभव किया था, परिणामस्वरूप हिन्दू और मुसलमान दोनों मिलकर अमन और चैनसे रहने लगे और देश उन्नतिकी ओर अग्रसर हुआ। एक बारकी बात है कि सम्राट् अकबरने अपने दरबारमें अपने खास नवरत्न बीरबलसे पूछा कि बीरबल दूध किसका अच्छा होता है? बीरबलने बगैर देर लगाये तुरंत जवाब दिया, 'जहाँपनाह! दूध तो भैंसका अच्छा होता है।' इस उत्तरपर अकबरको आश्चर्य हुआ और वे बोले—बीरबल! ये क्या कह रहे हो, रोज तो तुम गायकी तारीफ करते नहीं थकते थे, पर जब आज हमने दरबारमें दूधके विषयमें पूछा तो तुम भैंसके दूधकी तारीफ कर रहे हो? बीरबलने कहा—जहाँपनाह! पर आपने पूछा कि दूध किस जानवरका अच्छा होता है, तो मैंने भैंसका नाम लिया, यदि आपने अमृत पूछा होता तो मैं गोमाताका नाम लेता, गोमाता तो दूध नहीं, अमृत देती हैं। इसी तरह यक्षगीतामें यक्षने युधिष्ठिरसे अनेक प्रश्न किये, उसी क्रममें यक्षने एक प्रश्न ऐसा भी किया था '**किममृतम्**' अमृत क्या है? इस प्रश्नका उत्तर देते हुए युधिष्ठिरने उत्तर दिया '**गवामृतम्**' गोदुग्ध ही अमृत है। हमारे आयुर्वेदके प्रसिद्ध ग्रन्थ भावप्रकाशके अनुसार—'गोदुग्ध रस एवं विपाकमें मधुर, शीतल, स्निग्ध, गुरु और वृद्धावस्थाके समस्त रोगोंका शामक है।' गायका दूध पौष्टिक तत्त्वोंका भण्डार है, इसमें जल ८७, वसा ४, प्रोटीन ४, शर्करा ५ तथा अन्य तत्त्व १ से २ प्रतिशततक पाये जाते हैं। गायके दूधमें ८ प्रकारके प्रोटीन्स, ११ प्रकारके विटामिन्स, १२ प्रकारके पिगमेंट्स तथा ३ प्रकारकी दुग्ध गैसें पायी जाती हैं। गायके दूधमें केरोटीन नामक पदार्थ भैंसके दूधसे दस गुना अधिक होता है। केवल गायके दूधमें ही विटामिन 'ए' होता है, जो किसी अन्य पशुके दूधमें नहीं होता है। भैंसका दूध गरम करनेपर उसके सर्वाधिक पोषक तत्त्व मर जाते हैं, जबकि गायके दूधको गरम करनेपर भी पोषक तत्त्व वैसे ही विद्यमान रहते हैं। गोमाता अत्यन्त सात्त्विक तथा ममतामयी होती हैं, इसीलिये गायका दूध सात्त्विक होता है। गायका दूध पतला होनेसे जल्दी हजम हो जाता है, इससे रस-रक्तादि धातुओं एवं

स्मरणशक्तिकी वृद्धि होती है। अच्छे विचारों एवं अच्छे कार्योंकी ओर बुद्धिकी प्रवृत्ति होती है। अन्नकी अपेक्षा दूध जल्दी हजम होता है। दूध आप हर २-२ घण्टे बाद ४-६ बार थोड़ा-थोड़ा ले सकते हैं, दूध उतना ही लें जितना हजम हो जाय। केवल गायके दूधके पथ्यसे इन रोगोंमें लाभ होता है—जीर्ण ज्वर, अग्निमांद्य, तिल्लीवृद्धि, यकृतरोग, जलोदर, रक्तविकार, गंडमाला, अपस्मार, उन्माद, भ्रम, चक्कर, मूर्छा, उपदंश, विष और उससे उत्पन्न सभी प्रकारके दर्द, लकवा, लूलापन, शिर और नेत्ररोग, मस्तक शूल, मूत्राशयके रोग, पाण्डुरोग पीलिया, रक्तपित्त, प्यास, क्षय, हृदयरोग, छातीका दर्द, विषरोग, दवाओंकी उष्णता, अम्लपित्त, पेट शूल, उल्टियाँ, जुलाब, पेट फूलना, संग्रहणी, दस्तके विकार, मनके विकार आदि अनेक रोग केवल दूधके पथ्यसे ठीक हो जाते हैं। गोमाताके दूधके इन्हीं गुणोंके कारण ही सऊदी अरबके अलखिराज नामक स्थानमें गायोंका फार्म चल रहा है। इस फार्मका नाम है अलशफीज। अलशफीजका अर्थ होता है मेहरबान (कृपालु)—ये नाम गायके गुणोंके हिसाबसे रखा गया है। इस फार्ममें ३६ हजार गायें हैं, जिनमें ५ हजार भारतीय नस्लकी हैं। इन्हीं भारतीय नस्लकी गायोंका दूध रियादस्थित शाही महलमें जाता है। दूसरी नस्लकी गायोंका दूध शाही परिवार पसन्द नहीं करता है। यहाँपर कोई गाय कत्ल नहीं की जाती। हमारे देशकी देशी गायोंके रंगके अनुसार दूधके गुण भी बदल जाते हैं, ये कितनी बड़ी विशेषता है। काली गायका दूध वातनाशक होता है तथा लाल रंगकी गायका दूध पित्तनाशक होता है, श्वेत गायका दूध कफनाशक होता है। इसी प्रकार यदि आप गायका धारोष्ण दूध पीते हैं तो धारोष्ण दूध बलकारक, सुपाच्य, अमृततुल्य, अग्निदीपक और त्रिदोषशामक है। दोपहरमें पिया जानेवाला गायका दूध बलवर्धक, कफ-पित्तनाशक होता है तथा रातमें पिया जानेवाला दूध दुर्बलता और बुढ़ापा दूर करनेवाला होता है। आयुर्वेदके अनुसार सफेद गायके दूधको यकृतकी बीमारीमें, बादामी रंगकी गायके दूधको वातरोगमें, काली गायके दूधको श्वास तथा फेफड़ोंके रोगमें अत्यन्त गुणकारी बताया गया है। अथर्ववेदके प्रथमकाण्डके बाइसवें सूक्तमें लिखा है कि लाल रंगकी गायके दूध, दही, घी, मक्खन आदिसे हृदय एवं पाण्डुरोग नष्ट होते हैं। चरकसंहितामें गायके दूधके दस गुणोंका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

स्वादु शीतं मृदु स्निग्धं बहलं श्लक्ष्णपिच्छिलम्।
गुरु मन्दं प्रसन्नं च गव्यं दशगुणं पयः॥

(सूत्रस्थान २७। २१८)

अर्थात् गायका दूध स्वादिष्ट, शीतल, कोमल, चिकना, गाढ़ा, सौम्य, लसदार, भारी और बाह्य प्रभावको विलम्बसे ग्रहण करनेवाला तथा मनको प्रसन्न करानेवाला होता है।

इसी तरह सुश्रुतसंहितामें गायके दूधके दहीको स्निग्ध, विपाकमें मधुर, पाचक, बलवर्धक, वातनाशक, शुद्ध एवं रुचिकारक कहा गया है—

स्निग्धं विपाके मधुरं दीपनं बलवर्धनम्।
वातापहं पवित्रं च दधि गव्यं रुचिप्रदम्॥

(सु०सं० ४५। ६७)

गायके पाँच पदार्थों—पंचगव्य (दूध, दही, घृत, मूत्र तथा गोबर)-में अनेक बीमारियोंके इलाजके गुण विद्यमान हैं। गायसे प्राप्त पदार्थोंसे ही पंचगव्य बनता है और पंचामृतमें भी इसका उपयोग होता है। गायका दूध, दही, घी, मक्खन एवं छाछ (मट्ठा) अमृतका भण्डार है। इसी कारण कृतज्ञता-वश भारतवर्षमें गोमाताकी घर-घर पूजा होती है। गोमातामें ही ऐसी दिव्यता है कि जिसकी रीढ़की हड्डीमें सूर्यकेतु नाड़ी होती है, इसके सिवा दुनियाके किसी भी प्राणीमें ऐसा नहीं है कि जिसकी रीढ़की हड्डीमें सूर्यकेतु नाड़ी हो। इसीलिये गाय सूर्यके प्रकाशमें रहना पसन्द करती है। सूर्यकी किरणोंको गोमाताकी सूर्यकेतु नाड़ी ग्रहण करती है, इसी नाड़ीके क्रियाशील होनेपर वह पीले रंगका एक पदार्थ छोड़ती है, जिसे स्वर्णक्षार कहते हैं। इसीके कारण देशी गायका दूध, मक्खन, घी स्वर्णकान्तियुक्त होता है। इस दूधको पीनेसे शरीर पूर्ण रूपसे रोगमुक्त हो जाता है। गायका दूध तो धरतीका अमृत है, इसलिये प्रत्येक मनुष्यको कम-से-कम २७५ ग्राम दूध प्रतिदिन अवश्य पीना चाहिये। गोदुग्धमें यदि एक चम्मच गायका घी मिलाकर पियें तो शरीर पुष्ट एवं बलवान् होता है। गायका दूध गर्म करके पीनेसे कफका नाश होता है तथा उसी दूधको ठण्डा करके मिश्रीके साथ पीनेसे पित्तविकारका नाश होता है, शरीरकी

जलन शान्त करके अन्नपाचनमें सहायक बनता है। गायका दूध, दही, मक्खन, घी तथा छाछ (मट्ठा)—ये सभी मन, बुद्धिको सात्त्विक बनाकर हमारी विवेक शक्ति, ओज, ऊर्जा, कान्तिको बढ़ाते हैं। इसी दूधको पीकर हमारे प्राचीन भारतीयोंने इस देशको विश्वगुरु एवं सोनेकी चिड़िया कहलानेवाला देश बनाया था और जबसे भैंसका दूध आया तभीसे हृदयरोग, वातरोग, शुगर बढ़ी और भैंसके दूधने यहाँके लोगोंकी बुद्धि और पाचनक्रियाका नाशकर देशवासियोंको परमुखापेक्षी बना दिया। इसलिये गायके दूधका कोई विकल्प आजतक नहीं है। विश्व स्वास्थ्य संगठनके अनुसार माँके दूधके पश्चात् गायका दूध ही मानवके लिये सबसे ज्यादा उपयोगी है। गोदुग्धमें विद्यमान सेरिब्रोसाइस मस्तिष्क और स्मरण-शक्तिके विकासमें सहायक होता है। स्ट्रानटाइन अणु विकारोंका प्रतिरोधक होता है और एम०डी०जी०आई० प्रोटीनके कारण रक्त कोशिकाओंमें कैंसर प्रवेश नहीं कर सकता तथा गायके दूधसे कोलेस्ट्राल नहीं बनता है।

गोदुग्धसे गोघृत बनता है। सुश्रुतसंहितामें गायके घीके सम्बन्धमें लिखा है कि गायका घी विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, वात-पित्त और बिम्बका नाश करनेवाला, आँखोंकी ज्योति एवं शरीरकी सामर्थ्यको बढ़ानेवाला है और गुणोंमें अतिश्रेष्ठ है—

विपाके मधुरं शीतं वातपित्तविषापहम्।
चक्षुष्यमग्र्यं बल्यं च गव्यं सर्पिर्गुणोत्तरम्॥

(सु० सं० ४५। ९७)

गोघृत आँखोंके लिये विशेष फायदेमन्द होता है। श्यामा गायके घीसे गठिया, कुष्ठरोग, जले-कटे घावके दाग, नेत्रविकार, जलन, मुँहका फटना आदिपर आश्चर्यजनक लाभ होता है। गायका घी ऐन्टीसेप्टिक होता है। गायके घी तथा दूधमें कैंसरीय तत्त्वोंसे लड़नेकी क्षमता होती है। जो शक्ति गोघृतमें मिलती है, वह अण्डे या मांसाहारसे नहीं मिलती है। वैज्ञानिकोंकी मान्यता है कि १० ग्राम घी जलानेसे १ टनसे अधिक ऑक्सीजन पैदा होती है तथा वायुमण्डलमें एटामिक रेडिएशनका प्रभाव कम हो जाता है। इसीलिये देवी-देवताओंकी प्रसन्नताके लिये उनकी पूजामें गायके घी-दूधका ही प्रयोग होता था। जैसे गोमाताके दूधसे घी बनता है, उसी तरह जमाये हुए दहीमें चौथाई भाग पानी मिलाकर मथानीसे मथकर मक्खन निकालकर मट्ठा (छाछ) बनता है। यह मट्ठा पचनेमें अत्यन्त हलका, मल-मूत्र साफ करनेवाला, पाचक तथा अन्य द्रव्योंको पचानेवाला, अतिसार, संग्रहणी, वायु, पीलिया, पेट शूल, मूत्रकृच्छ्र, हैजा, मूत्राघात, अश्मरी, उदर रोगोंमें अमृतके समान गुणकारी होता है। यदि आपको वातविकार है तो मट्ठा सेंधानमक मिलाकर लें, यदि पित्तविकार है तो मट्ठा-शक्कर मिलाकर लें तथा जिनको कफविकार है, वे सोंठ, सेंधानमक, कालीमिर्च और पीपल मिलाकर लें, यदि आप मूत्रकृच्छ्रकी समस्यासे ग्रसित हैं तो आप मट्ठा-गुड़ मिलाकर लें, पाण्डुरोगमें चित्रकचूर्ण मिलाकर लें। इस तरहसे गोमाताके दूध, घी, मट्ठा तीनों ही महान् गुणकारी तथा रोगोंका नाश करनेवाले हैं।

उपरोक्त सभी गुणोंके कारण ही हमारे ऋषि-मुनि, राजा-महाराजा गोमाताको अपने पास बड़े आदरपूर्वक रखते थे और उनकी पूजा किया करते थे। राम, कृष्ण, वसिष्ठ, जमदग्नि-जैसे महात्मा गोमाताको प्राणोंसे बढ़कर रखते थे और उनसे मनोवांछित फल प्राप्त किया करते थे। आज फिरसे यदि हम पुराने गौरवको पाना चाहते हैं तो हमें गोमाताकी शरणमें जाना ही पड़ेगा। यदि ऐसा न करेंगे तो हम अपने खोये हुए गौरवको वापस कभी नहीं पा सकते। अन्तमें परमपूज्य गोमाताओंको नमस्कार, कामधेनुकी संतानोंको नमस्कार, ब्रह्माकी पुत्रियोंको नमस्कार, पावन करनेवाली गौओंको नमस्कार।

नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च।
नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः॥

इस लेखके माध्यमसे कल्याणके सभी पाठकोंसे विनम्र निवेदन है कि आप सभी लोग यदि रख सकते हों तो एक गाय जरूर रखें, यदि आप नहीं रख सकते तो गायका दूध, घी और मट्ठा जरूर अपने भोजनमें शामिल करें, यदि ऐसा भी नहीं कर सकते तो आप गायोंके प्रति सहानुभूति रखें, उन्हें कोई प्रताड़ित कर रहा हो तो उनकी रक्षा करें। भगवान् कृष्णकी गोमाताके साथवाली तस्वीर अपने घरमें जरूर लगायें, इससे वातावरण सात्त्विक बनेगा, साथ ही साथ गोमाताका आदर भी बढ़ेगा।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

सहज सफल साधन

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपमें आस्तिकता है, भगवद्विश्वास है, संयम एवं साधनाकी रुचि है, यह बहुत ही शुभ लक्षण है। अनेक जन्मोंके पुण्य प्रारब्ध होनेपर ही मनुष्यकी रुचि साधनकी ओर होती है।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये।

जीव बन्धनमें क्यों आया? इसके उत्तरमें शास्त्र कहते हैं कि 'बन्धन अनादि, पर सान्त है,' लेकिन यह स्पष्ट है कि बाँधनेवाले हैं—भोग-कामना, कर्मासक्ति और विभिन्न संस्कार। आसक्तिके कारण ही हम संस्कारोंका संग्रह करते हैं और ये संस्कार ही जन्म-मृत्युके कारण होते हैं। जबतक जीवमें कामना है, आसक्ति है, तबतक यह आवागमन रहेगा ही।

जीव इस बन्धनसे छूटनेमें स्वतन्त्र है। सभी शास्त्रोंने मनुष्यको स्वतन्त्र माना है, लेकिन स्वतन्त्रताका भी अर्थ है। अनेक बार हम जो चाहते, वह कर नहीं पाते। जिसे न करनेका बराबर विचार करते हैं, वही हो जाता है। गीताका यही **'बलादिव नियोजितः'** है; लेकिन भगवान्ने इसका कारण बताया है—**'काम एष क्रोध एष।'**

जैसे एक अफीमची या शराबी दीर्घकालीन अभ्यासके पश्चात् अपनेको लगभग विवश पाता है; वह निश्चय करके भी अपनेको नशेसे प्रायः बचा नहीं पाता; लेकिन इसीसे उसे परतन्त्र नहीं कहा जा सकता। वह अपने ही अभ्यासके परतन्त्र है और दृढ़ निश्चयसे इस परतन्त्रतासे त्राण पानेमें वह समर्थ है—यही उसकी स्वतन्त्रता है। ऐसे ही हम जन्म-जन्मके अपने संस्कारोंसे विवश होते हैं, पर दृढ़ निश्चय और निरन्तर प्रयत्नद्वारा इस स्थितिसे परित्राण मिल सकता है।

भगवान् दया करते हैं। वे दयामय हैं, सबपर दया करते हैं। हम, आप या कोई मनुष्य ऐसा मिल नहीं सकता, जिसने कभी भगवान्की दयाका साक्षात्कार न किया हो। हम पीछे उसे भूल जायँ, उसे संयोग कह दें, यह दूसरी बात। आप अपने जीवनके संकटके क्षणोंको सोचें और देखें कि भगवान् दयामय हैं या नहीं—**'अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।'** (गीता ६।४५)

हमारे लिये यह जीवन बहुत बड़ा है, पर पृथ्वीकी आयुमें एक मनुष्यका जीवन कितना और ब्रह्माण्डोंमें पृथ्वीकी आयु ही कितनी! जहाँ अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्डोंकी आयु पल-जैसी है, वहाँ हमारे जीवनका क्या अर्थ होता है। जीवका जीवन अनन्त है और उस अनन्त जीवनमें उसे सबल समर्थ होकर अपने दयामय प्रभुसे सान्निध्य प्राप्त करना है। वह माता दयामयी नहीं होगी, जो पुत्रको गोदसे उतारे ही नहीं; बालक तो गिरेगा, उठेगा और इसीसे चलनेकी शक्ति पायेगा। माताका काम उसे देखना, उसका संरक्षण करनामात्र है। दयामय प्रभु यदि जीवको कर्म-स्वातन्त्र्य न दें तो यह क्या दयालुता होगी? तोता पिंजड़ेमें सुरक्षित रहता है, वनमें बाजका भय भी हो सकता है; पर उसे पराधीन कर देना तो दया नहीं है। जैसे बच्चेको माताकी दया, माताकी सहायता सदा उपलब्ध है; पर बच्चेकी दृष्टिमें वह तभी आती है, जब वह पूर्णतः अपनेको असहाय-असमर्थ समझकर क्रन्दन कर उठता है, माताको जब वह सचमुच आर्त होकर पुकारता है। बीचमें उसका यों ही रोना माता नहीं भी सुनती है; क्योंकि बच्चेमें अभी शक्ति है और उसे चलना चाहिये। उसकी कायरता माताको इष्ट नहीं हो सकती। यही अवस्था हमारी है। उद्योग न करके दूसरे बहाने करना तो प्रमाद है। जब सचमुच हमारी शक्ति सर्वथा असमर्थ हो जाती है, हम निरवलम्ब होते हैं, तभी सच्ची प्रार्थना होती है। तभी हृदय आर्त पुकार करता है और विश्वके समस्त महापुरुषोंने कहा है कि 'ऐसी

प्रार्थना न सुनी जाय, यह हो ही नहीं सकता।'

हम अपने साधनोंमें सफल नहीं होते, इसमें कोई-न-कोई त्रुटि होनी चाहिये। हमें सावधानीसे उस त्रुटिको ढूँढ़ना चाहिये। विकारोंको तनिक भी अवकाश मिलनेपर वे प्रबल हो जाते हैं, यह तो ठीक ही है; लेकिन उनके प्रबल होनेके और भी कारण होते हैं—आहार, अध्ययन, संग—इनकी पवित्रता और इसके साथ चित्तके लिये कोई सुदृढ़ आधार। मन कहीं तो लगेगा ही। आप उसे किसी दिव्य आधारमें न लगाये रहेंगे तो वह बार-बार विकारोंकी ओर जायगा। इसीलिये आस्तिकताहीन संयम और सदाचार कब नष्ट हो जायगा, यह कहा नहीं जा सकता। आवश्यक यह है कि मनको कोई दृढ़ आधार दिया जाय।

आजके युगमें भगवन्नाम-जप और भगवान्के रूप, गुण, लीला, अवतारचरित-पठन-चिन्तन सबसे सुलभ एवं उत्तम आधार है। नामकी शक्ति अपार है। सभी संत नाम-जपकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। मनको बार-बार भगवान्के रूप-लीलामें लगाना तथा अधिक-से-अधिक नाम-जप करना—ये उत्तम साधन हैं। नाम-जपसे शक्ति मिलेगी और चित्त शुद्ध होगा।

भगवान् दयामय हैं, वे सबके सुहृद् हैं, अतः हमारे उद्धारमें तो सन्देहको स्थान ही नहीं। उन्होंने स्वयं अपनेको '**सुहृदं सर्वभूतानाम्**' कहा है और हम एक प्राणी तो हैं ही, लेकिन हममें अशान्ति इसीलिये है कि हमें विश्वास नहीं होता कि वे सर्वेश हमारे सुहृद् हैं—

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५। २९)

आप उनमें पूरा विश्वास करें। प्रभुमें, उनकी दयामें, उनके मंगल-विधानमें पूरी आस्था करके दृढ़ निश्चय एवं सावधानीसे हमें अपनेको साधनमें लगाना है। भगवान्के नामका जप इस युगका सर्वोत्तम आधार है और उसका आश्रय हमें शक्ति देगा। शेष भगवत्कृपा।

(२)

सकाम देवाराधन अनुष्ठान भ्रम नहीं है

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आपने लिखा कि 'विष्णु-शंकरकी पूजा-आराधना, देवताओंके अनुष्ठान, स्तोत्रोंके पाठ, मन्त्र-जप, प्रार्थना आदिसे जो लाभ होनेकी बात कही जाती है, वह ठीक नहीं मालूम होती। कहीं कोई लाभ होता है तो वह इन अनुष्ठानोंसे ही होता है, ऐसा क्यों माना जाय? इनसे तो उलटा भ्रम फैलता है। लोग सफल तो होते नहीं, व्यर्थ झंझटमें पड़ते हैं।' आपका यह विचार मेरी समझसे ठीक नहीं है। यह सत्य है कि प्रारब्ध बदलता नहीं, प्रारब्धका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है; पर यह शास्त्रका नियम है कि देवाराधन आदि कर्म सुसम्पन्न होनेपर ऐसे नवीन प्रारब्धका निर्माण होता है, जो फलदानोन्मुख प्रारब्धके बीचमें अपना फल उत्पन्न करता है; यद्यपि ऐसा बहुत ही कम होता है, पर हो सकता है। अतएव इन दैवी साधनोंका प्रयोग सकाम भावसे करना न तो भ्रम है, न इनके प्रचारसे भ्रम फैलता है और न ये व्यर्थ ही होते हैं। ये सत्कर्म तो हैं ही। प्रारब्ध नया न बने, तब भी इनका परिणाम शुभ ही होता है। अवश्य ही यह सत्य है कि सकाम भावसे आराधना करना परमार्थ-साधकके लिये कर्तव्य नहीं है। जिसको जगत्से छूटना है, वह सकाम साधना क्यों करे? क्योंकि यह भी है जगत्-प्रपंचकी ही चीज। पर जो लोग सकाम भौतिक कर्म करते हैं, वे उन भौतिक कर्मोंसे कहीं ऊँचे आराधनादि आध्यात्मिक कर्म करें तो ऐसा करना श्रेष्ठ ही है। सब जगह फल उत्पन्न न हों, इसमें श्रद्धाकी कमी, विधिकी हीनता, बहुत प्रबल प्रतिबन्धक आदि—कई कारण होते हैं। यह सर्वथा सत्य है कि सब क्षेत्रोंमें लाभ न होनेपर भी बहुतोंको इनसे लाभ होता है। अतएव सकाम कर्म करनेवालोंके लिये यथारुचि यथाधिकार इन सब अनुष्ठानोंका करना-कराना कर्तव्य है और इनसे लाभ ही होता है। आपकी श्रद्धा न हो तो आप न करें, यह दूसरी बात है। शेष भगवत्कृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें २।४० बजेतक	गुरु	रोहिणी रात्रिशेष ५।१९ बजेतक	२६ नवम्बर	**कार्तिक व्रतकी पारणा।**
द्वितीया ,, १।२२ बजेतक	शुक्र	मृगशिरा रात्रिमें ४।४३ बजेतक	२७ ,,	**मिथुनराशि** सायं ५।१ बजेसे।
तृतीया ,, १२।३० बजेतक	शनि	आर्द्रा ,, ४।३२ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** दिनमें १२।५६ बजेसे रात्रिमें १२।३० बजेतक।
चतुर्थी ,, १२।७ बजेतक	रवि	पुनर्वसु ,, ४।५० बजेतक	२९ ,,	**कर्कराशि** रात्रिमें १०।४६ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८।३६ बजे।
पंचमी ,, १२।१४ बजेतक	सोम	पुष्य रात्रिशेष ५।३८ बजेतक	३० ,,	**मूल** रात्रिशेष ५।३८ बजेसे।
षष्ठी ,, १२।५४ बजेतक	मंगल	आश्लेषा अहोरात्र	१ दिसम्बर	**भद्रा** रात्रिमें १२।५४ बजेसे।
सप्तमी ,, २।१ बजेतक	बुध	आश्लेषा प्रात: ६।५८ बजेतक	२ ,,	**भद्रा** दिनमें १।२८ बजेतक, **सिंहराशि** प्रात: ६।५८ बजेसे।
अष्टमी ,, ३।३६ बजेतक	गुरु	मघा दिनमें ८।४३ बजेतक	३ ,,	**श्रीभैरवाष्टमी, मूल** दिनमें ८।४३ बजेतक।
नवमी रात्रिशेष ५।३० बजेतक	शुक्र	पू० फा० ,, १०।५३ बजेतक	४ ,,	**कन्याराशि** सायं ५।३० बजेसे।
दशमी अहोरात्र	शनि	उ० फा० ,, १।२० बजेतक	५ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ६।३५ बजेसे।
दशमी प्रात: ७।३९ बजेतक	रवि	हस्त सायं ३।५६ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** दिनमें ७।३९ बजेतक, **तुलाराशि** रात्रिशेष ५।१३ बजेसे।
एकादशी दिनमें ९।४९ बजेतक	सोम	चित्रा रात्रिमें ६।३० बजेतक	७ ,,	**उत्पन्ना एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, ११।५१ बजेतक	मंगल	स्वाती ,, ८।५३ बजेतक	८ ,,	**भौमप्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, १।३६ बजेतक	बुध	विशाखा ,, ११।० बजेतक	९ ,,	**भद्रा** दिनमें १।३६ बजेसे रात्रिमें २।१६ बजेतक, **वृश्चिकराशि** सायं ४।२९ बजेसे।
चतुर्दशी ,, २।५६ बजेतक	गुरु	अनुराधा ,, १२।३९ बजेतक	१० ,,	**मूल** राशिमें १२।३९ बजेसे।
अमावस्या सायं ३।५० बजेतक	शुक्र	ज्येष्ठा ,, १।५१ बजेतक	११ ,,	**धनुराशि** रात्रिमें १।५१ बजेसे, **अमावस्या।**

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा सायं ४।१० बजेतक	शनि	मूल रात्रिमें २।३२ बजेतक	१२ दिसम्बर	**मूल** रात्रिमें २।३२ बजेतक।
द्वितीया सायं ३।५९ बजेतक	रवि	पू० षा० ,, २।४४ बजेतक	१३ ,,	× × ×
तृतीया दिनमें ३।१९ बजेतक	सोम	उ०षा० ,, २।२७ बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २।४६ बजेसे, **मकरराशि** दिनमें ८।४० बजेसे।
चतुर्थी ,, २।१३ बजेतक	मंगल	श्रवण ,, १।४५ बजेतक	१५ ,,	**भद्रा** दिनमें २।१३ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, १२।४३ बजेतक	बुध	धनिष्ठा ,, १२।४४ बजेतक	१६ ,,	**कुम्भराशि** दिनमें १।१५ बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें १।१५ बजे, **श्रीराम-विवाह, धनु-संक्रान्ति** रात्रिमें ११।४७ बजे, **खरमासारम्भ।**
षष्ठी ,, १०।५३ बजेतक	गुरु	शतभिषा ,, ११।२५ बजेतक	१७ ,,	**चम्पाषष्ठी** (महाराष्ट्रमें प्रसिद्ध)।
सप्तमी ,, ८।४८ बजेतक अष्टमी रात्रिशेष ६।३३ बजेतक	शुक्र	पू०भा० ,, ९।५५ बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** दिनमें ८।४८ बजेसे रात्रिमें ७।४१ बजेतक, **मीनराशि** सायं ४।१८ बजेसे।
नवमी रात्रिमें ४।१३ बजेतक	शनि	उ०भा० ,, ८।१८ बजेतक	१९ ,,	**मूल** रात्रिमें ८।१८ बजेसे।
दशमी ,, १।५१ बजेतक	रवि	रेवती ,, ६।३७ बजेतक	२० ,,	**मेषराशि** रात्रिमें ६।३७ बजेसे, **पंचक** समाप्त रात्रिमें ६।३७ बजे।
एकादशी ,, ११।३३ बजेतक	सोम	अश्विनी सायं ४।५९ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** दिनमें १२।४२ बजेसे रात्रिमें ११।३३ बजेतक, **मोक्षदा एकादशीव्रत (सबका), श्रीगीता-जयन्ती, मूल** सायं ४।५९ बजेतक।
द्वादशी ,, ९।२५ बजेतक	मंगल	भरणी दिनमें ३।२८ बजेतक	२२ ,,	**वृषराशि** रात्रिमें ९।९ बजेसे, **सायन मकरका सूर्य** रात्रिमें ७।११ बजे।
त्रयोदशी ,, ७।२९ बजेतक	बुध	कृत्तिका ,, २।१० बजेतक	२३ ,,	**प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, ५।५३ बजेतक	गुरु	रोहिणी ,, १।९ बजेतक	२४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ५।५३ बजेसे रात्रिशेष ५।१५ बजेतक, **मिथुनराशि** रात्रिमें १२।४८ बजेसे, **व्रत-पूर्णिमा।**
पूर्णिमा सायं ४।३८ बजेतक	शुक्र	मृगशिरा ,, १२।२८ बजेतक	२५ ,,	**पूर्णिमा, श्रीदत्तात्रेय-जयन्ती।**

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५-२०१६, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, पौष कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा सायं ३। ४८ बजेतक	शनि	आर्द्रा दिनमें १२। ११ बजेतक	२६दिसम्बर	**कर्कराशि** रात्रिशेष ६। २० बजेसे।
द्वितीया दिनमें ३। २७ बजेतक	रवि	पुनर्वसु ,, १२। १३ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ३। ३३ बजेसे।
तृतीया ,, ३। ३८ बजेतक	सोम	पुष्य ,, १।५ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** दिनमें ३। ३८ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८। १३ बजे, **मूल** दिनमें १। ५ बजेसे।
चतुर्थी सायं ४। २१ बजेतक	मंगल	आश्लेषा ,, २। १७ बजेतक	२९ ,,	**सिंहराशि** दिनमें २। १७ बजेसे, **पूर्वाषाढ़ा का सूर्य** रात्रिमें १२। ४५ बजे।
पंचमी ,, ५। ३१ बजेतक	बुध	मघा सायं ३। ५६ बजेतक	३० ,,	**मूल** सायं ३। ५६ बजेतक।
षष्ठी रात्रिमें ७। ८ बजेतक	गुरु	पू० फा० रात्रिमें ६। १ बजेतक	३१ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७। ८ बजेसे, **कन्याराशि** रात्रिमें १२। ३७ बजेसे।
सप्तमी ,, ९। ४ बजेतक	शुक्र	उ० फा० ,, ८। २४ बजेतक	१ जनवरी	**भद्रा** दिनमें ८। ६ बजेतक, सन् २०१६ ई० प्रारम्भ।
अष्टमी ,, ११। १२ बजेतक	शनि	हस्त ,, ११। ० बजेतक	२ ,,	**अष्टकाश्राद्ध।**
नवमी ,, १। २२ बजेतक	रवि	चित्रा ,, १। ३७ बजेतक	३ ,,	**तुलाराशि** दिनमें १२। १८ बजेसे।
दशमी ,, ३। २२ बजेतक	सोम	स्वाती ,, ४। ४ बजेतक	४ ,,	**भद्रा** दिनमें २। २२ बजेसे रात्रिमें ३। २२ बजेतक।
एकादशी रात्रिशेष ५। ६ बजेतक	मंगल	विशाखा रात्रिशेष ६। १५ बजेतक	५ ,,	**वृश्चिकराशि** रात्रिमें ११। ४२ बजेसे, **सफला एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, ६। २२ बजेतक	बुध	अनुराधा अहोरात्र	६ ,,	× × ×
त्रयोदशी अहोरात्र	गुरु	अनुराधाा दिनमें ८। ० बजेतक	७ ,,	**प्रदोषव्रत, मूल** दिनमें ८। ० बजेसे।
त्रयोदशी प्रात: ७। १४ बजेतक	शुक्र	ज्येष्ठा ,, ९। २० बजेतक	८ ,,	**भद्रा** प्रात: ७। १४ बजेसे रात्रिमें ७। २३ बजेतक, **धनुराशि** दिनमें ९। २० बजेसे।
चतुर्दशी ,, ७। ३१ बजेतक	शनि	मूल ,, १०। ७ बजेतक	९ ,,	**श्राद्धकी अमावस्या, मूल** दिन १०। ७ बजेतक।
अमावस्या ,, ७। १८ बजेतक	रवि	पू० षा० ,, १०। २६ बजेतक	१० ,,	**मकरराशि** सायं ४। २४ बजेसे, **अमावस्या।**
प्रतिपदा रात्रिशेष ६। ३६ बजेतक				

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१६, सूर्य दक्षिणायन-उत्तरायण, हेमन्त-शिशिर ऋतु, पौष शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
द्वितीया रात्रिशेष ५। २८ बजेतक	सोम	उ०षा० दिनमें १०। १६ बजेतक	११जनवरी	**उत्तराषाढ़ाका सूर्य** रात्रि १। २२ बजे।
तृतीया रात्रिमें ३। ५६ बजेतक	मंगल	श्रवण ,, ९। ३९ बजेतक	१२ ,,	**कुम्भराशि** रात्रिमें ९। ११ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ९। ११ बजे।
चतुर्थी ,, २। ४ बजेतक	बुध	धनिष्ठा ,, ८। ४४ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** दिनमें ३। ० बजेसे रात्रिमें २। ४ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, ११। ५९ बजेतक	गुरु	शतभिषा प्रात: ७। २९ बजेतक पू०भा० रात्रिशेष ६। १ बजेतक	१४ ,,	**मीनराशि** रात्रिमें १२। २३ बजे।
षष्ठी ,, ९। ४३ बजेतक	शुक्र	उ० भा० रात्रिमें ४। २४ बजेतक	१५ ,,	**मकर-संक्रान्ति** प्रात: ७। ३४ बजे, **खिचड़ी, पुण्यकाल** प्रात: ७। ३४ से सूर्यास्ततक, खरमास समाप्त, **उत्तरायण प्रारम्भ, शिशिर ऋतु प्रारम्भ, मूल** रात्रिमें ४। २४ बजेसे।
सप्तमी ,, ७। २२ बजेतक	शनि	रेवती ,, २। ४३ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७। २२ बजेसे रात्रिशेष ६। १२ बजेतक, **मेषराशि** रात्रिमें २। ४३ बजेसे, **पंचक समाप्त** रात्रिमें २। ४३ बजे।
अष्टमी सायं ५। २ बजेतक	रवि	अश्विनी ,, १। ५ बजेतक	१७ ,,	**मूल** रात्रिमें १। ५ बजेतक।
नवमी दिनमें २। ४४ बजेतक	सोम	भरणी ,, ११। ३१ बजेतक	१८ ,,	**वृषराशि** रात्रिशेष ५। ११ बजेसे।
दशमी ,, १२। ३७ बजेतक	मंगल	कृत्तिका ,, १०। १० बजेतक	१९ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११। ४० बजेसे।
एकादशी ,, १०। ४२ बजेतक	बुध	रोहिणी ,, ९। ३ बजेतक	२० ,,	**भद्रा** दिनमें १०। ४२ बजेतक, **पुत्रदा एकादशीव्रत (सबका), सायन कुम्भका सूर्य** रात्रिमें २। ५७ बजे।
द्वादशी ,, ९। ८ बजेतक	गुरु	मृगशिरा ,, ८। १९ बजेतक	२१ ,,	**मिथुनराशि** दिनमें ८। ४१ बजेसे, **प्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी प्रात: ७। ५४ बजेतक	शुक्र	आर्द्रा ,, ७। ५५ बजेतक	२२ ,,	× × ×
चतुर्दशी ,, ७। ७ बजेतक	शनि	पुनर्वसु ,, ८। ० बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** प्रात: ७। ७ बजेसे रात्रिमें ६। ५९ बजेतक, **कर्कराशि** दिनमें १। ५९ बजेसे, **व्रत-पूर्णिमा।**
पूर्णिमा ,, ६। ४९ बजेतक	रवि	पुष्य ,, ८। ३४ बजेतक	२४ ,,	**पूर्णिमा, शाकम्भरी जयन्ती, श्रवणका सूर्य** रात्रिमें २। ३१ बजे, **मूल** रात्रिमें ८। ३४ बजेसे, **माघ स्नानारम्भ।**

कृपानुभूति

ओरछेश प्रभुकी कृपा

सन् १९६३ ई० की बात है, मैं डबरा, जिला ग्वालियर (म०प्र०)-में स्थित एक डिग्री कॉलेजमें प्राध्यापक पदपर कार्यरत था। मेरी माँकी ओरछा-दर्शनकी इच्छा थी, अत: उनकी इच्छाकी पूर्तिके उद्देश्यसे एक दिन मैं माँको साथ लेकर ओरछा-दर्शनके लिये चल पड़ा। मेरे साथ एक छात्र भी था, जो वहाँके दर्शनीय स्थलोंसे परिचित था। हम लोग नरवर होते हुए शिवपुरी पहुँचे और वहाँके दर्शनीय स्थलोंका भ्रमणकर वहीं रात्रि-विश्राम किया और दूसरे दिन सुबह पहली बससे झाँसी गये और वहाँसे ताँगेद्वारा ओरछा पहुँचे। चूँकि मैं प्रथम बार ओरछा जा रहा था, अत: मन्दिरकी समयसारिणीका मुझे ज्ञान नहीं था। भगवान्का प्रसाद लेते समय दुकानदारने चेताया कि जल्दी जाओ, पट बन्द होनेका समय हो रहा है। उस समय मन्दिरमें आजकल-जैसी भीड़-भाड़ नहीं होती थी और न सुरक्षा-व्यवस्था ही कड़ी थी। अत: जल्दी-जल्दी चलकर हम तीनों जन मन्दिर-प्रांगणमें प्रवेशकर भगवान् ओरछेशके गर्भगृहके द्वारतक पहुँच गये, किंतु देखा कि गर्भगृहके दोनों किवाड़ बन्द हैं। दुकानदारद्वारा बतायी गयी आशंका सत्य सिद्ध हुई। किंकर्तव्यविमूढ़ होकर हम वहीं बैठ गये। क्या करें? कुछ समझ नहीं आ रहा था। कोई भी मन्दिरमें दिख नहीं रहा था, जिससे मन्दिरके कपाट पुन: खुलनेके विषयमें पूछा जा सकता।

हम भगवान्के दर्शनके पश्चात् ही भोजन करनेका संकल्प लेकर चले थे, अत: बिना दर्शन किये कहाँ और क्यों जायँ, कुछ निश्चय नहीं कर पा रहे थे। भाव यह बन रहा था कि सायंकालीन दर्शनहेतु पट खुलनेतक यहीं प्रतीक्षा की जाय। मनमें तरह-तरहके भाव आ-जा रहे थे। हम मन-ही-मन सोच रहे थे कि कहीं अनजानेमें कोई भूल तो नहीं हो गयी। हम अपराधबोधसे ग्रस्त चुपचाप आत्ममन्थन कर रहे थे। यकायक अप्रत्याशित चमत्कार हुआ। गर्भगृहके द्वारपर लगे लकड़ीके बन्द किवाड़ोंसे चूँ-चूँकी आवाज आने लगी, जिससे भाव-विचारोंमें डूबे मेरे मन-मस्तिष्ककी चेतनता लौटी तो आँख खोलकर देखा और उछलकर लगभग चीखते हुए बोला, 'जीजी! पट खुल गये, जल्दी दर्शन करो।' हम लोगोंने एक खुले किवाड़मेंसे ही श्रद्धा एवं प्रेमपूर्वक जी भरकर भगवान् श्रीरामदरबारके दर्शन किये और परमानन्दकी अनुभूति की। हम कुछ और सोच-समझ पाते कि खुला किवाड़ चूँ-चूँ-की आवाजके साथ बन्द हो गया; तभी ध्यान आया, किवाड़ कैसे खुला! बिल्ली-जैसे किसी जीव आदिको किसीने बाहर निकलते नहीं देखा और न ही किसीको किवाड़ बन्द करते देखा। मन्दिर-प्रांगणमें भी कोई आते-जाते नहीं दिखा। बहुत सोच-विचारके बाद भी समाधानकारक उत्तर नहीं पा सकनेपर केवल प्रभुकी कृपाका चमत्कार मानकर प्रांगणके बाहर आकर भोजन किया और प्रसन्नचित्त वापस झाँसी होकर डबरा लौट आया।

बादमें मैंने मध्यप्रदेश शासनकी सिविल सेवामें नौकरी पा ली और कई जिलोंमें कार्य करते, वर्ष १९७६-७७ ई० में मेरी पोस्टिंग तहसीलदारके रूपमें तहसील निवाड़ी जिला टीकमगढ़में हो गयी। ओरछेश मन्दिरके प्रबन्धक तत्समय जिला कलेक्टर होते थे। उन्होंने अपनी व्यस्तता एवं जिला मुख्यालयसे मन्दिरकी दूरीके कारण मन्दिर-व्यवस्थाका कार्य तहसीलदार निवाड़ी यानी मुझे सौंप दिया।

मैं हर रविवारको ओरछा जाकर कार्य-सम्पादन और दर्शनकर वापस निवाड़ी आ जाता, परंतु १९६३ ई० की उपरिदर्शित घटना मेरे मन-मस्तिष्कमें बराबर घूमा करती थी। एक दिन मैंने स्वयं जाँच की तो पाया कि गर्भगृहमें पूर्व तथा दक्षिणकी ओर दो जोड़ी किवाड़ लगे हैं। जिनमेंसे दक्षिण स्थित दरवाजा पुजारीके उपयोगके लिये तथा पूर्वी द्वार दर्शनार्थियोंके लिये होता है। नियत समयपर पुजारी पूर्वी द्वार खोलते तथा बन्द करते हैं और कुंडी लगाकर दक्षिणी द्वारसे बाहर आते-जाते हैं, बाहर ताला लगाकर चाबी स्वयं रखते हैं। यह नियमित प्रक्रिया है। अत: पुजारीके निकलने एवं तालेके बन्द होनेके बाद पूर्वी द्वारका यकायक केवल एक किवाड़ खुलना फिर कुछ पलमें ही पुन: बन्द होना प्राय: असम्भव ही है। ऐसी दशामें किसी तार्किक समाधानके अभावमें अहेतुकी कृपाकर्ता, करुणासागर, भक्तवत्सल ओरछेश महाराजकी कृपावर्षा ही थी, जिससे दरवाजेपर पड़े भूखे-प्यासे हम तीनोंको असीम तृप्ति प्राप्त हुई।—**डी०के० शर्मा**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

सेवाव्रती रिक्शावाला

मेरे जीवनका चिरप्रतीक्षित स्वप्न साकार हुआ। श्रीश्रीजगन्नाथपुरीकी अविच्छिन्न महिमा निरन्तर सुनती आ रही थी। मनमें उत्कट अभिलाषा थी कि इस पावनतीर्थ-धामके दर्शनकर नेत्र सफल करूँ। संयोगवश मनःकामना पूर्ण हुई। कलकत्तेसे 'पुरी-एक्सप्रेस' रेलमें बैठकर मैं तथा मेरे पति दिनांक १५ मार्च १९८४ ई० को प्रातः ८ बजे पुरी पहुँचे। स्टेशनपर अनेक पण्डोंके बीच हमारे पूर्वजोंको जाननेवाले गोवर्धन पण्डा, हम दोनोंको एक रिक्शेमें बैठाकर हमारे लिये पहलेसे आरक्षित अवकाश-गृहमें ले गये। जिस रिक्शेमें बैठकर हमलोग गये थे, उसका चालक सज्जन पुरुष था। उसके व्यवहारसे हम दोनों बहुत ही प्रभावित हुए। वह निरन्तर हमारे अवकाश-गृहके नीचे खड़ा हमें पुरीके दर्शनीय स्थलोंमें घुमानेके लिये प्रस्तुत रहता। सभी स्थानोंका उसे विस्तृत ज्ञान था। पता नहीं, किस दैवीय प्रेरणासे प्रेरित होकर वह हम-जैसे अपरिचित यात्रियोंके प्रति इतना उदार था। जीर्ण-शीर्ण कपड़ोंमें लिपटा हुआ वह अवश्य ही कोई देवदूत-जैसा हमें लगता था।

हम लोग नहा-धोकर निवृत्त हुए। फिर १० बजे सुबह ही हमारे पण्डाजी उसी रिक्शेमें श्रीजगन्नाथजी, बलरामजी एवं सुभद्राजीके भव्य मन्दिरमें हमें ले गये। श्रीश्रीजगन्नाथजीके चरणोंमें पहुँचकर मन पूर्णतया श्रद्धासे अभिभूत हो उठा। समस्त स्थानोंकी परिक्रमाकर हम अपने अवकाश-गृहमें लौट आये।

दिनांक १६ मार्च १९८४ ई० को एक पर्यटक-बसद्वारा हमलोग पुरीके अन्य पावन तीर्थस्थलोंके भ्रमणके लिये गये। 'गाइड' बड़े ही सुरुचिपूर्ण ढंगसे मार्गमें आनेवाले दर्शनीय स्थलोंका परिचय दे रहा था। भव्य कोणार्कमन्दिर, भुवनेश्वरनगरी, जैन-मन्दिर तथा रास्तेके अन्य प्रसिद्ध तीर्थों एवं भवनोंका विवरण उसने दिया। इसके पश्चात् हमलोग 'नन्दन-कानन' नामकी वनस्थलीको देखते हुए लौटे।

दिनांक १७ मार्च १९८४ ई० को हमें 'कलिंगा एक्सप्रेस' द्वारा राउरकेला इस्पातनगरीके लिये प्रस्थान करना था। अवकाश-गृहके बाहर हमारा चिर-परिचित मानवताका प्रतीक रिक्शेवाला उपस्थित था और हमें स्टेशन पहुँचानेकी बाट देख रहा था। उसने स्वयं ही आकर हमारा सामान रिक्शेमें रखा और विभिन्न भवनोंका वर्णन करता हुआ हमें स्टेशनकी ओर ले चला। हमें ट्रेनमें बैठाकर ही वह वापस जानेके लिये तैयार हुआ।

हमलोग उसके व्यवहारसे आश्चर्यचकित थे। हमें ऐसा लगा कि यह तो कोई सेवाव्रती है, जो भगवान् जगदीश्वरकी पुरीमें रहकर रिक्शाके माध्यमसे आनेवाले यात्रियोंकी समुचित पुरस्कारमें निश्छल सेवा करता है। मैं तो उस रिक्शाचालककी इस सेवा-भावनाको देखकर नतमस्तक-सी हो गयी। मेरे मानसमें 'मानस'की यह पंक्ति उतर आयी—

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

आज भी मुझे उसकी विस्मृति नहीं हो पाती है, जिसके साहचर्यसे हम पुरीमें निश्चिन्ततापूर्वक भ्रमण कर सके।—**श्रीमती मीरा अग्रवाल**

(२)

ईमानदार विद्यार्थी

यह बात १६ अगस्त १९७४ ई० की है। मेरे पिताके एक मित्र श्रीसिंह, जो पोस्ट-ऑफिसमें डिवीजनल इन्सपेक्टरके पोस्टपर कार्यरत हैं, १६ अगस्तको करीब नौ बजे रातको प्रधान डाकघरसे अपने घर मोटर साइकिलसे जा रहे थे। वे अपना हैण्डबैग मोटर साइकिलके पीछे कैरियरमें दाबे हुए थे। श्रीसिंह जब अपने घर पहुँचे तब देखते हैं कि कैरियरमें हैण्डबैग नहीं है। वे बहुत चिन्तित हुए और फौरन मोटर साइकिलपर सवार हुए और पूरे रोडको देखते हुए वापस डाकघर पहुँचे, लेकिन हैण्डबैग कहीं दिखायी नहीं पड़ा। वे वहाँसे बहुत निराश होकर घर लौट आये। हैण्डबैग नहीं मिलनेके शोकमें वे रातभर सो नहीं पाये और सुबह होते ही हमारे आवासपर पहुँचे। उन्होंने सारी बातें हमारे पिताजीसे कह सुनायीं। हमारे

पिताजी एक रिटायर्ड पोस्टल ऑफिसर हैं और श्रीसिंहके शुभचिन्तक भी। मेरे पिताजी सारी बातें सुनकर मुझे खबर करने मेरे पास आये और बोले कि श्रीसिंह तुम्हें खोज रहे हैं। मैं फौरन उनसे मिलने पहुँचा। श्रीसिंह बहुत उदास थे। श्रीसिंह बोले—'मेरा बैग कल नौ बजे रातको मोटर साइकिलसे गिर गया। मैं पूरे शहरमें लाउडस्पीकरसे प्रचार करवाना चाहता हूँ।' मैं तुरंत तैयार हो गया और पूरे शहरमें प्रचार किया। प्रचारमें करीब चार घण्टे लगे, लेकिन हैण्डबैगका कहीं भी पता नहीं चला।

श्रीसिंह बहुत निराश होकर बोले—'अब तो भगवान् ही हैं!'

'क्या आप ही जमदारसिंह हैं?' एक अपरिचित व्यक्तिने उनसे उस समय पूछा जिस समय श्रीसिंह अपने दरवाजेपर स्नान कर रहे थे। 'हाँ मेरा ही नाम जमदारसिंह है' श्रीसिंह बोले। आगन्तुकने पूछा—'क्या आपका ही हैण्डबैग खो गया है? कल मैंने हैण्डबैग खो जानेका प्रचार सुना, वह हैण्डबैग मुझे परसों रातको रास्तेपर गिरा पड़ा मिला। क्या आपका हैण्डबैग यही है?' श्रीसिंह बोले—'हाँ-हाँ-हाँ, यही हैण्डबैग है!' आगन्तुक व्यक्ति हैण्डबैग बढ़ाते हुए श्रीसिंहसे बोला—'देख लीजिये, आपका सामान सुरक्षित है न!' श्रीसिंहने हैण्डबैग हाथमें लेते हुए भगवान्‌को लाख-लाख धन्यवाद दिया और बोले—'हाँ-हाँ सुरक्षित है।' उस हैण्डबैगमें एक लुंगी, एक राइफलका लाइसेंस, रेलवेका मोतिहारीसे बेतियातकका मासिक टिकट, फोटो-सहित एक सौ रुपये तथा बहुत जरूरी सरकारी कागजात थे। सभी सामानोंके साथ हैण्डबैग पाकर श्रीसिंहकी खुशीका ठिकाना न रहा। श्रीसिंहने सौका एक नोट उस अपरिचित व्यक्तिको इनामके तौरपर देनेके लिये हाथ बढ़ाया। उस व्यक्तिने सौका नोट हाथमें न लेते हुए कहा—सर, यह तो मेरा कर्तव्य था। मैं एक विद्यार्थी हूँ।'—**राजकिशोर**

(३)

प्रार्थनाकी शक्ति और ईश्वरमें विश्वास

भारतके प्रसिद्ध हार्ट स्पेशलिस्ट डॉ० मॉडळे आज बहुत खुश थे। खुश होनेका कारण भी वैसा ही था। हालहीमें उन्हें उनके शोध-निबन्धके लिये प्रतिष्ठा पुरस्कारकी घोषणा हुई थी।

उस समारोहके लिये वे विमानद्वारा दिल्ली जानेके लिये निकले। निश्चित समयपर विमानने उड़ान भरी।

डॉ० मॉडळे अपने विचारोंमें खो गये। उस शोध-निबन्धके लिये उन्हें बहुत कष्ट उठाने पड़े थे। रात-दिन वे संशोधनमें मग्न रहते। अनेक विचार उनके मनमें उठ रहे थे। अचानक! विमानको आपातकालीन लैंडिंग करना पड़ा। डॉ० मॉडळे समारोहमें समयसे पहुँचनेकी चिन्तामें पड़ गये। एयरपोर्टके अधिकारीने उनसे कहा कि अगली फ्लाइट १० घण्टे बाद है। इस कारण डॉ० मॉडळेने किरायेकी कारसे रास्ता तय करनेका विचार किया। लगभग वहाँसे ५ से ६ घण्टेका सफर था। कोई अन्य विकल्प न होनेसे वे कारद्वारा रवाना हुए।

अभी घण्टाभर भी न चले होंगे कि अचानक मौसम बदलने लगा और बहुत जोरोंकी वर्षा होने लगी। रास्तेके साइनबोर्ड बराबर दिख नहीं रहे थे। काफी आगे जानेके बाद ध्यान आया कि वे रास्ता भूल गये हैं। बारिशका जोर (वेग) बढ़ता जा रहा था। कहीं आसरा ढूँढ़ना आवश्यक था। भगवान्‌की दयासे थोड़ी दूरीपर एक मकान दिखा। वहाँ पहुँचकर उन्होंने दरवाजा खटखटाया। एक स्त्रीने दरवाजा खोला और उनका स्वागतकर अन्दर आनेके लिये कहा। उसका घर एकदम साधारण था। सामान भी थोड़ा ही था, महँगा सामान नहीं था। उस स्त्रीने डॉ० के लिये चाय एवं बिस्किट दिये और उनसे कहा—'मेरी प्रार्थनाका समय हो गया है, क्या आप मेरे साथ प्रार्थना करेंगे?'

डॉ० मॉडळे सिर्फ कर्मयोगपर विश्वास करते थे, इस कारण उन्होंने सभ्यतासे इनकार किया। स्त्री उठी, वह भगवान्‌की मूर्तिके सामने दीपक जलाकर प्रार्थना करने लगी। प्रार्थनाके प्रत्येक अन्तरेके बाद वहाँ रखे छोटे-से पालनेको हिलाती। डॉ० उसके क्रिया कलापोंका निरीक्षण कर रहे थे और उनके मनमें उससे पूछनेके लिये

अनेक प्रश्न तैयार हो रहे थे।

कुछ समय बाद उसकी प्रार्थना समाप्त हुई। डॉ० ने उससे पूछा—१. इन सब बातोंका (प्रार्थनाका) कुछ उपयोग हुआ है क्या? २. भगवान्‌ने कभी तुम्हारी पुकार सुनी है क्या? ३. और तुम वह पालना बार-बार क्यों हिलाती थीं? उस स्त्रीके चेहरेपर अचानक खिन्नता आ गयी। बड़े बुझे स्वरमें बोली—

मेरे दो सालके पुत्रको जन्मसे ही हृदयरोग है। बम्बईके प्रसिद्ध डॉ० मॉडळेको छोड़कर इसका इलाज कोई नहीं कर सकता। पर उनके पास जानेके लिये भी मेरे पास पैसे नहीं हैं। मैं रोज भगवान्‌से प्रार्थना करती हूँ कि कैसे भी करके मुझे उनके पासतक पहुँचा दीजिये और मेरे बेटेको जीवनदान दीजिये। मुझे विश्वास है एक दिन भगवान् मेरी जरूर मदद करेंगे।

अगले क्षण चारों तरफ नि:शब्द वातावरण हो गया। डॉ० मॉडळे एकदम स्तब्ध थे। क्या बोलें—यही उन्हें समझमें नहीं आ रहा था। बीते कुछ घण्टोंमें घटी घटनाओंपर विचार करने लगे। किसी प्रकारका लक्षण न होते हुए भी मौसमका अचानक खराब हो जाना। हवाई जहाजकी आपातकालीन लैंडिंग, कारद्वारा रास्ता भटकना और इसी घरमें आसरा लेना! और अभी-अभी उस स्त्रीद्वारा बतायी गयी वस्तुस्थिति! क्या अद्भुत! कैसा चमत्कार!

कुछ क्षण पश्चात् डॉ० ने उस महिलाको अपना परिचय दिया और बारिश खत्म होते ही उसे और उसके बच्चेको लेकर वे बम्बईके लिये रवाना हो गये और साथ ही एक चीज और ली भगवान्‌पर आपार निष्ठा!

किसी भी पुरस्कारसे भी ज्यादा मिला था उन्हें आज।

[प्रेषक—स्वामी श्रीशंकरानन्द सरस्वती]

(४)

व्रजके कण-कणमें राधा-कृष्ण

भगवान् भावमें विराजते हैं, यदि हम उन्हें भावसे देखें तो वे हर जगह दिखायी देते हैं, ऐसे ही सारे ब्रज-मण्डलमें युगल सरकारकी उपस्थिति दिखायी पड़ती है।

बात अगस्त, सन् २०१२ ई० की है, जब मैं अपनी पत्नी, दो माहके पुत्र और एक भागवत समूहके साथ सात दिनोंके लिये बरसाना गया था, अगस्त माहमें उस समय अधिक बारिश न होनेके कारण वहाँ बहुत गर्मी थी, पुत्रको इस कारण बहुत परेशानी हो रही थी एवं पुत्रकी अस्वस्थताके कारण पत्नीको धर्मशालासे समूहके साथ दर्शन और धार्मिक स्थलोंमें जानेकी असमर्थताके कारण अफसोस हो रहा था।

ऐसे ही एक शाम सारे समूहने बरसानाके पास एक पवित्र सरोवरमें जानेका विचार किया और जब सब समूहके लोग पवित्र कुण्डमें आनन्द ले रहे थे, मेरी पत्नी एवं पुत्र अस्वस्थताके कारण अपने आपको दुखी समझ रहे थे।

तभी एक बालिका जो देखनेमें उम्रमें सात-आठ सालकी रही होगी और दिखनेमें सुन्दर थी, मेरी पत्नीसे उनके सरोवरमें न जानेका कारण पूछने लगी तथा बड़ी ही आत्मीयतासे मेरी पत्नीसे बात करने लगी और उन्हें पानीमें जानेके लिये प्रेरित करने लगी तथा विश्वास दिलाने लगी कि आपके अस्वस्थ पुत्रको कुछ नहीं होगा और वह थोड़ी देर बाद वहाँसे चली गयी। पत्नीने जब ये बात समूहमें उपस्थित लोगोंको बतायी तो सभी एक मतसे कहने लगे कि हो न हो वे इस ब्रजमण्डलकी स्वामिनीजी होंगी, जो अपने भक्तोंकी असमर्थता दूर करती हैं और इसपर जोर मिला कि जो भक्त यदि किसी कारणसे मन्दिर या तीर्थ जानेपर असमर्थ हो तो भगवान् स्वयं ही किसी रूपमें आकर दर्शन देते हैं और राधाजी तो कभी नहीं चाहेंगी कि कोई उनके राज्यसे दुखी होकर जाय।

इस घटनासे यह बल मिला कि ब्रजमण्डलकी हर वस्तुमें कृष्ण-राधा बसे हैं, जरूरत तो बस, आँखोंकी है और यदि भावपूर्ण आँखें मिल जायँ तो वे हमसे दूर नहीं हैं।—**आलोक उपाध्याय**

मनन करने योग्य

महापुरुषोंका त्यागमय जीवन

'तुम्हें अपने अध्यक्षको फटे कुर्तेमें देखकर शर्म तो महसूस नहीं होगी।' सरदार पटेलने ये शब्द दिल्ली विश्वविद्यालय छात्रसंघके अध्यक्षसे तब कहे थे, जब उसने पटेलसे अपने विद्यालयके वार्षिकोत्सवकी अध्यक्षता करनेका आग्रह किया था। उनके पास तीन ही कुर्ते थे और तीनोंमें जगह-जगहपर पैबन्द लगे हुए थे। उन्होंने अध्यक्षको आश्वासन दिया कि वे पीठपर शाल डालकर आ जायेंगे; क्योंकि एक कुर्ता थोड़ा-सा ही पीठपर फटा हुआ था और उसपर शाल डालकर आसानीसे उसे छुपाया जा सकता है।

उन्होंने मणि (पुत्री)-से दूधमें कटौती करके अगले माह एक कुर्ता बनानेके लिये कह दिया। उनके वेतनका अधिकांश भाग विधवाश्रमके सहायतार्थ जाया करता था। वे मात्र सौ रुपये मासिकमें अपना गुजारा किया करते थे।

यह त्याग-तपस्याका ही प्रताप था कि उन्होंने देखते-देखते ही देशी रियासतोंको भारतीय संघमें शामिल करनेका अद्भुत कार्य कर दिया था। जब हैदराबादके प्रधानमन्त्री कासिम रिजवीने थोड़ा नानुच किया तो उन्होंने कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशीको अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा था। शामको रेडियोपर उन्होंने घोषणा की—'यदि रिजवीने मेरे प्रतिनिधिके साथ कोई बदसलूकी की तो मैं हिन्दुस्तानके नक्शेसे हैदराबादका नामोनिशान मिटा दूँगा।' रिजवीने तत्क्षण हथियार डाल दिये थे।

उनके बारेमें कहा जाता है कि जब पटेल बोलते थे तब ब्रिटिश प्रधानमन्त्री सर विंस्टन चर्चिल रेडियोसे कान लगाये बैठा रहता था।

बंगालके स्वनामधन्य विद्वान् ईश्वरचन्द्र विद्यासागरको संस्कृत कॉलेजके आचार्य पदपर रहते हुए आठ सौ रुपये प्रतिमाह मिलते थे, वे भी अपना अधिकांश पैसा बंगालके बेरोजगार नौजवानोंको रोजगार करनेके लिये दे दिया करते थे। वे घरपर ज्यादातर समय सामान्य धोती और बनियानमें ही रहते थे।

भारतके भूतपूर्व प्रधानमन्त्री लाल बहादुर शास्त्रीपर मृत्युके समय बीस हजार रुपयेका ऋण था।

बापूने देशकी दुर्दशा देखकर आजीवन ऊपरी कपड़ोंका त्याग कर दिया था, वे आजीवन लँगोटीनुमा एक ऊँची धोतीमें ही रहते थे। स्वतन्त्रता-संग्राममें मिली राशिका वे पैसे-पैसेका हिसाब रखते थे। एक बार दानमें मिले एक गहनेपर जब कस्तूरबाका मन ललचा गया तो पहले तो उन्होंने उन्हें बुरी तरह झिड़का, फिर प्रेमसे समझाकर शान्त किया।

रामकृष्ण परमहंसको जब एक मारवाड़ी सेठने बीस हजार रुपये देने चाहे तो वे उसे लाठी लेकर मारने दौड़े थे। उनके विषयमें प्रसिद्ध है कि यदि भूलसे भी उन्हें पैसोंका स्पर्श हो जाता था, तो उनके शरीरमें जलन होने लगती थी।

संत रैदासके प्रति मीराबाईका पूज्य भाव था, जब उन्होंने तीन थाल हीरे-मोतियोंसे भरे भेंट करना चाहा तो उस संतने कहा—माँ! मैं जूतियोंकी सिलाईसे चार पैसे रोज कमा लेता हूँ, एक पैसा गंगा मैयाको, एक पैसा काशी विश्वनाथको और एक पैसा गरीबोंको दे देता हूँ, शेष एक पैसेके आटा-दालसे मेरा गुजारा आरामसे हो जाता है। मैं इन हीरे-मोतियोंका क्या करूँगा? उन्होंने वे सब भीड़को लुटा दिया।

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर 'आजाद' ने रिपब्लिकन आर्मीकी स्थापना की थी, उसके लिये हथियार आदि खरीदनेके लिये उन्होंने बहुत-सारा धन भी एकत्रित किया था। उनकी माता अत्यन्त अभावोंमें रहती थीं, परंतु उन्होंने कभी भी उसमेंसे एक पैसा भी माँको नहीं दिया और न स्वयंके उपयोगमें ही लिया।

गोधन गज धन बाजि धन और रतन धन खान।
जब आवे संतोष धन सब धन धूरि समान॥

अमर गुरुओंके इन शब्दोंपर ध्यान दो—यह याद रखो कि तुम किसीके नहीं हो और कोई तुम्हारा नहीं है। यह समझ लो कि किसी दिन अचानक तुम्हें इस संसारका सब कुछ छोड़कर चल देना होगा, मायाके आवरणमें तुम अपनेको हाड़-मांसकी गठरी मान बैठे हो—यही सब दुःखोंका कारण है।

सब कुछ लुटाकर ही श्मशानवासी देव महादेव कहलाते हैं।—**गोपालकृष्ण जिन्दल**

श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना

(इस जपकी अवधि कार्तिक पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०७१ से चैत्र पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०७२ तक रही है)

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

'राजन्! मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नाम-स्मरण करते और दूसरोंसे नाम-स्मरण करवाते हैं।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस वर्ष भी इस षोडश नाम-महामन्त्रका जप पर्याप्त संख्यामें हुआ है। विवरण इस प्रकार है—

(क) मन्त्र-संख्या ९०,४९,६५,४०० (नब्बे करोड़, उनचास लाख, पैंसठ हजार, चार सौ)।

(ख) नाम-संख्या १४,४७,९४,४६,४०० (चौदह अरब, सैंतालीस करोड़, चौरानबे लाख, छियालीस हजार चार सौ)।

(ग) षोडश नाम-महामन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका भी जप हुआ है।

(घ) बालक, युवक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, अपढ़ एवं विद्वान्—सभी तरहके लोगोंने उत्साहसे जपमें योग दिया है। भारतका शायद ही कोई ऐसा प्रदेश बचा हो, जहाँ जप न हुआ हो। भारतके अतिरिक्त बाहर फ्रामिंघम, मिडिलटाउन, यू०के०, यू०एस०ए०, यूनाइटेड किंगडम, नेपाल आदिसे भी जप होनेकी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं।

स्थानोंके नाम—

अंकलेश्वर, अंगनापारा, अंगुल, अंधराठाढी, अंबिकापुर, अंबरनाथ, अंबाजोगाई, अंबाला कैंट, अंबाला छावनी, अंबाला शहर, अकराबाद, अकलतरा, अकलेरा, अकोड़ा, अकोला, अगराई, अगराना, अचलवेर, अचरोल, अचानामुरली, अचौसा, अछनेरा, अछरेरा, अजबपुरा, अजमेर, अजरानाकलाँ, अठहठा, अडसीसर, अतरी, अधारपुर, अनगाँव, अमडाड़, अमरा, अमरावती, अमरावती (घाट), अमलोह, अमलनेर, अमाचन, अमानगंज, अमृतपुर, अमृतसर, अम्बाह, अरइल, अरड़का, अरनेठा, अररिया, अररिया बैरगाछी, अलकनन्दा, अलवर, अलीगढ़, अलीपुरकला, अल्मोड़ा, अवरई, असनावर, असवार, अहमदनगर, अहमदाबाद, अहिरौलिया-टोला, आइसन आई.टी. रोड, आऊवा, आगरा, आदित्यपुरम्, आधाचाट, आनन्दनगर, आबूरोड, आमगाँवबड़ा, आमागढ़, आर्वी, आष्टा, आला (नेपाल), आलेफाटा, आलोट, आसंग, इंदरवास, इंदौर, इकलहरा, इचलकरंजी, इजोत, इटावा, इसौली, इलाहाबाद, इरांग पार्ट I-II, इरेल भेली I-II, उखुल, उज्जैन, उदगीर, उदयपुर, उदरादा, उधमसिंहनगर, उनियारा, उन्नाव, उमरधा वनखेड़ी, उमरापट्टी, उरतुम, उलहासनगर, उस्मानाबाद, ऊदपुर, ऊना, ऊमरी, ऊसरी, ऋषिकेश, एकहारा, एकान्तवाड़ी, एटा, एरू, ऐनखेड़ा, ओड़ारसकरी, ओडीट, ओडेकरा, औंवा-बुजुर्ग, औरंगाबाद, औरैया, कंचनपुर, कंदरोड़ी, कंसोपुर, ककोला, कचौरा, कछुआ, कटक, कटगी, कटनी, कटरा, कटियाघाट, कटिहार, कटैया, कठार, कठुआ, कड़ीला, कथुवा, कथैयाँ, कनखल, कन्धाना, कनलगाँव, कनैड, कन्नौज, कन्हौली गजपति, कपासन, कफलोडी, कमलापुर, करड़ी, करनसर, करनाल, करबगाँव, करकबेल, करही (शुक्ल), करीमुद्दीनपुर, करोरा, करौदी, कलकत्ता, कवलपुरा मठिया, कसेरा बाजार, कहुआरा, काँगड़ा, कांगपोक्पी, कांग्लातोम्बी, कांधला, काउली, काकड़सागवाड़ा, कानड़ी, कानपुर, कानूडीह, कानूनगोयान, कान्दीवली, कापरेन, कामता, कामा, कालका, कालाडेरा, कालापहाड, कालूखाँड़, कालूहेड़ा, काशीपुर, किरारी, किदवईनगर, किशनगंज, किसरौल, कीरतपुर, कीसीयरपुर, कुँआरिया, कुक्षी, कुचामन सिटी, कुड़ाना, कुतबपुर, कुमड़ी, कुमारडीह, कुमासजागीर, कुरमाली, कुरुक्षेत्र, कुशहर, कुसैला, कूड़ाघाट, कृपालपुर, कृष्णनगर, केंकरा, केदारपुरा, केन्दुआ, केशरपुरा, केसिंगा, कैथल, कैथवलिया, कैनखोला, कैमुआ, कोंच, कोंडागाँव, कोईरागै, कोईलारी, कोकड़ी, कोकलकचक, कोटद्वार, कोटा, कोठी, कोड़लहिया, कोथराखुर्द, कोब्रुलैखा, कोरबा, कोरदा, कोलकाता, कोलारस, कोलिया, कोलीटेक, कोशीथल, कोसीकला, कोसीर, कोहका, कौहाकुड़ा, कौलती (नेपाल), कौवाताल, खंडवा, खंडेला, खकसीस, खगड़िया, खजुरीरूण्डा, खजुहा, खडगवॉकला, खड़ीत, खरगापुर, खरगोन, खराड़ी, खवासा, खानकित्ता, खामगाँव, खारकलाँ, खालवा, खालवागाँव, खालिकगढ़, खालिनी, खिरकिया, खिरलिया, खिरिया, खीवसर, खुँटपला, खुमार, खुरई, खुर्जा, खेड़ा रसूलपुर, खेत, खेलदेश पाण्डेय, खैरवा, खैराचातर, खैराबाद, खोकराकला, खोरियाबाजार, खोलाखेत, गंगटोप, गंगाघाट, गंगेव, गंगोह, गंज, गंजदारानगर, गजरौला, गढ़कोट, गढ़पुरा, गढ़फुलझर, गढ़बसई, गढ़ा, गणेती, गनोड़ा, गया, गरियाखेड़ी, गरोठ, गहमर, गाँधीधाम, गाँधीनगर, गागर, गाजियाबाद, गाजीपुर, गाडरवारा, गाड़ाटेल, गाड़ीपुरा, गीर, गुड़गाँव, गुड़ाकला, गुना, गुरुदासपुर, गुरैया, गुलबर्गा, गुवाहाटी, गेठीगाड़ा, गोंडा,

गोकुलनगर, गोगोलाव, गोनेड़ी, गोपालपुर, गोपिबुंग, गोपेश्वर, गोरखपुर, गोरेगाँव, गोवडीहा, गोवर्धनपुर बाजार, गोहिदा, गौंछेड़ा, गौरिया वरारी, ग्वालियर, घईधार, घगोंट, घघरा, घटियाली, घरसोंधी, घरैहली, घाटासेर, घानीखेड़ी, घालोनताल, घिंचलाय, घुंसी, घुघुली, घुनमारा, घोठा, घोड़ेगांव, घोसिया, चंडीगढ़, चंडीस्थान, चंदला, चंदौली, चंदपुर, चकिया, चक्कीरामपुर, चटसारी, चतुरताई, चपकीबघार, चमौली, चम्पाघाट, चरी, चरैया, चाँडेल, चाँद, चाँदनीबैलबंद, चाचौड़ा, चार हजारे, चावलपानी, चास, चिचोली, चिटहेरा, चिनिया, चित्तौड़गढ़, चित्रकूट, चिलौली, चिल्हाड, चीचली, चुड़ा चाँदपुर, चुरू, चेन्नई, चेवड़ीधगोगी, चैतड़, चैसार, चोरबड़, चोपड़ा, चोरौत, चौखा, चौखुटिया, चौधरी बसन्तपुर, चौन्ताला, चौमहला, चौरास, चौली, चौहटन, च्यौड़ी, छकना, छत्तागंगोह, छपिया, छाणीबाजार, छापड़ा, छिरास, छिकलहा, छोटालाम्बा, छोटी सादरी, जंगबहादुरगंज, जंघोरा, जगतपुरा, जट्टारी, जबलपुर, जमशेदपुर, जमुआव, जम्मू, जयनारायण (व्यासनगर), जयपुर, जरयाई, जरूड़, जरौल, जलगाँव, जलपाईगुड़ी, जलालगढ़, जलोदा खाटयान, जल्तूरी, जशपुरनगर, जशो, जसदेवपुर, जॉजगीरचॉपा, जाखनीखेत, जाजरदेव, जाजली, जानडोल, जानीपुर, जामपाली, जालन्धर, जालौन, जिन्तूर, जींद, जुगसलाई, जुलगाँव (नेपाल), जैतारन, जैतो, जैपूर, जैसलमेर, जोधपुर, जोरहाट, जौनपुर, जौनापंचाकला, जौलजीवी, ज्वालापुर, झझुराटभका, झाँसी, झाझड़, झालरापाटन, झुट्ठा, झुन्झूनू, झूँसी, झूलाघाट, झिलमिला, झीमरकालरी, झोटवासुर, टटेड़ा, टिकड़ीखिलड़ा, टिमरनी, टीकमगढ़, टुंडी, टूंगरी, टूण्डरी टाउन, टोका, टोडाराय सिंह, टोरड़ा, ठकुरापार, ठकठौलिया, ठठारी, ठाँ, ठाणी, ठाणे, ठीकरिया, ठीकरी, डंगनिया, डडूका, डबरा, डबारो, डाबला, डालीगंज, डाल्टनगंज, डिब्रूगढ़, डीग, डीह, डीडवाना, डुमेहर, डेलापीर, डोंगरगढ़, डोबखुमाड़, ढकनालहिया, ढढवाल, ढढ़ानामिल्ली, ढाँगू, ढाकिया, ढाड़ीरावत, ढायफी, ढेकवारी, ढेगाडीह, तरखान, तर्भा, ताकुला, ताजपुर, तारानगर, तालबन्ना, तालागाँव, तलोटी, तिनसीना, तिलाड़, तिवसा, तिसपरी, तीनफेड़िया, तुलाह, तुलुण्ड, तेथड़ा, तेल्हारा, तोक्या, तोला, तोली, तोरीबारी, तोलरा, त्रिवेन्दरम, थरभीतिया, थल, थाणे, थानेसर, थुलवासा, दड़ीबा, दत्यारसुनी, दतिया, दरगहिया, दरियापुर, दरौना, दर्री, दव्यार, दहमी, दहिवद, दाड़ी, दातारामगढ़, दानापुर, दामनजोड़ी, दामोदरपुर, दियरी, दिल्ली, दीगरा, दीनपुर, दीमरखेड़ा, दुआरी, दुधपुरा, दुबारपुरा, दुबेपुर, दुमदुमा, दुर्ग, देरगाँव, देवखैरा, देवगाँव, देवतुंग, देवनगर, देवरा, देवरिया, देवरीकला, देवली, देवशरण, देवास, देहरादून, दौलतगंज, दौलतपुर चौक, दौलतपुरा, दौसा, द्वारका, धनसार, धन्धौड़ा, धनौरामण्डी, धमधा, धरवार, धरोगड़ा, धर्मपुरा, धवाड़, धसनिया, धार, धाली, धुलीया, धूमनगंज, धौलपुर, धौलाकुँआ, नंगतड़ी, नअगा, नगरगाँव, नदियामी (गोठ), नन्दावता, नन्हावारा कला, नबाबगंज, नयाबाजार, नयी दिल्ली, नरकण्डा, नरवाना, नरसिंहपुर, नरायनपुर, नरियालगाँव, नवादा, नांदन, नांदेड़, नागपुर, नागलपुर, नागौर, नाचनी, नाढ़ी, नानामाण्डवा, नारनौल, नारायणपुर, नारायणपुरा, नावांसिटी, नासिक, निनावला, निबिहा, निम्बोला, नियामताबाद, निवाड़ी, निहरी, नीमच, नीमताल, नीलगिरि, नेवरा, नेवारी (फुलवारी), नैनवा, नैनवारा, नैनी (डोहरिया), नैनीताल, नैवेद, नोएडा, नोनार (पीरो), नोनीहाट, नोनैती, नोहर, पंडतेहड़, पंडेर, पकड़ी, पचावली, पटना, पटना सिटी, पटियाला, पड़रीखुर्द, पड़ग, पड़रियाडाड़, पडोलिया, पतालघुटकुरी, पतारी, पत्थरकोट (नेपाल), पत्योरा, पथरगुआँ, पथरिया, पथरी, पनवाड़ी, पन्त्यूड़ी, पन्धाना, पन्ना, पद्मनाभ नगर, परवतसर, परतुर, परलीबैजनाथ, परवारीपुरा, परसाधाम, परसापाली, परसिया, परौक, पलवल, पलाई, पलेई, पलेरा, पहरा, पहारपुर, पाटई, पाटलीपुत्र, पाण्डुकेश्वर, पाण्डेयडीह, पाण्डेपुर, पाताल, पानापुर, पारादीप, पालाकोल, पाली, पाली मारवाड़, पाहल, पिंडरई, पिजड़ा, पिछोर, पिठौरा, पिथोरागढ़, पिपरिया, पिपरौआकला, पिलखुआ, पिलाकिछा, पिसावा, पीठीपट्टी, पीपलारावा, पुखऊ, पुणे, पुनासा, पुरन्दाहा, पुरसन्डा, पुराना भर्थना, पुरेना, पूरेगंगाराम, पोखरभिण्डा, पोड़ीकला, पौआखाली, पौना, प्रतापगढ़, प्रतापपुर तरहर, फतेहगढ़, फतेहपुर, फरीदाबाद, फर्रुखाबाद, फसिया, फागा, फागी, फिरवासी, फिरोजपुर, फिरोजपुरझिरका, फिल्लौर, फूलपुररामा, फूलबेहड़, फैजाबाद, बंगलौर, बक्खापुरवा, बखरी बाजार, बगदड़िया, बघेरा, बछरावा, बजकोट, बड़कागाँव, बड़खेरवा, बड़पारी, बड़पास, बड़ारी, बड़ालू, बड़ौत, बड़ौदा, बढ़लठोर, बदडीहा, बनवसा, बनाडा, बनेड़िया, बनोरा, बनैल, बन्नी, बभनान, बमोरा, बरखेडासोमा, बरडा, बरडेज, बरीकेल, बरेला, बरेली, बरीपुरा, बरूड़, बरेलीकलॉ, बरैल, बरोरी, बरोहा, बर्डोद, बलिगाँव, बलिया, बलौदा, बसंत, बसन्तपुरखुर्द, बसदेहड़ा, बसरेहर, बसान, बसुहार, बस्ती, बहेरी, बस्तर, बाँसवाडा, बागपत, बागबहरा, बाघामारा, बाघौद, बाडमेर, बाढ़, बानूछपरा, बाप, बामनखेड़ा, बाम्हनबाड़ा, बार, बारा, बाराकोट, बाराबंकी, बालांगीर, बालूमाजरा, बावड़ियाकला, बावल, बिकौर, बिगहिया, बिटोरा, बिडरेली, बिडोली, बिदराली, बिलरा, बिवार, बिलौद, बीकानेर, बीड़का खेड़ा, बीनागंज, बीरसायर, बीवडकला, बुलन्दशहर, बुल्ढाणा,

बेगू, बेगमगंज, बेनियाकाबास, बेरलीखुर्द, बेरहामपुर, बेरी, बेरीनाग, बेलड़ा, बेलवाबाबू, बेलसोन्डा, बेलासद्दी, बेलोना, बेहट, बैकुंठपुर, बैका-विष्णुपुर, बैरमपुर, बैरसिया, बैला, बोधन, बोराड़ा, बौरब्यास बडगो, ब्रह्मनपुर, ब्रह्मापल्ली, भगवानपुर, भटगाँव, भटवाड़ा, भटेवराबाजार, भडूको, भदानीनगर, भदेसी, भदौरा, भन्दर, भयन्दर, भरखरा, भरतनगर, भरतपुर, भरथना, भरवाई, भरसी, भरूच, भलदेन, भलस्वा ईसापुर, भवनपुरा, भाटाखेरी, भांडेर, भाऊगढ़, भागलपुर, भाठापार, भाणुजा, भादरा, भिण्ड, भिण्डुवा, भिनगा, भिनाय, भिलाई, भिवण्डी, भिवानी, भीखनपुर, भीटवाड़ा, भीड़वालमाजरी, भीनासर, भीरा, भुता, भुन्नास, भुवनेश्वर, भुसावर, भुसावल, भुतौली, भून्तर, भेड़वन, भैसड़ा, भैरमपुर, भैरुन्दा, भोकरदन, भोगपुर, भोजपुर, भोपाल, भौली, मँगता, मंगलपुर, मंगराजपुर, मंजेश्वर, मंडी, मंत्रिपुखी, मंदसौर, मक्यांग, मऊ, मगरलोड, मगोरी, मजिरकांडा (नेपाल), मझगुवाँखुर्द, मझलैटा, मझवलिया, मझेवला, मडवा, मतवाना, मथुरा, मदारीचक, मधुबनी, मनकापुर, मनसुली, मरुकिया, मलँगवा (ने०), मलहद, मलान, मलेनपुरवा, महका, महगाँव, महतोडीह, महरौनी, महल, महलसरा, महाजनान, महादेवा, महासमुन्द, महिषी, महुआशाला, महुडर, महेसानी (ने०), महेन्द्रनगर, महेन्द्रू, महेसी, मांडल, माओहिंग, माचलपुर, माडलगढ़, माड़र, मानगो, मानसरोवर, मानेडाड़ा, मारगोमुण्डा, मावली, मिझौरा, मिरचोड़ा, मिर्जापुर, मिश्रपुर, मिश्राढ़ौर, मिश्राना, मिसरहिया, मीन्डी, मीतली, मुँगेर, मुँगेली, मुम्बई, मुजफ्फरनगर, मुजफ्फरपुर, मुरमूनी, मुरादाबाद, मुरार, मुरैना, मुर्तुपार, मुलताई, मुल्लनपुर, मुलुण्ड, मूडी, मूढीपार, मेघनगर, मेटपल्ली, मेड़तारोड, मेड़तासिटी, मेडुआडीह, मेरठ, मेवड़ा, मेहराना, मैहतपुर, मोटबुंग, मोतियाडुमरिया, मोरपा, मोरकोन, मोलकोन, मोलानी, मोहनघाटी, मोहाली, मौजपुर, मौडमंडी, यमुनानगर, यवतमाल, रंजनबाजार, रघुपुरमहसौरा, रठेरा, रणग्राम, रतकूड़िया, रतनपुर, रतनपुरा, रतनमहका, रतलाम, रतवाई, रतनागरपुर, रनचिराई, रन्नौद, रमईपुर, रसूलपुर, रसूलिया, रहली, राँची, राऊ, राजना, राजनाद गाँव, राजुरी, राजरूपपुर, राजाआहर, राजापारा, राजेपुर, राजेश्वरीनगर, राटन, रानापुर, रानीकटरा, रानीगंज, रामनगर, रामपुर, रामपुरनैकिन, रामपुरवा, रामेश्वर कम्पा, रायगढ़, रायपुर, रायबरेली, रायरंगपुर, रावतपुर, रावतसर, रींगस, रुई, रुठियायी, रुड़की, रेवड़ापुर, रेवासीपकड़ी, रेहलू, रैहन, रोपर, रोपा, रोहनिया, रोहतास, रोहिणी, लक्ष्मणगढ़, लखनऊ, लखीमपुर खीरी, लट्ठा, लडवा, लमतंग, लरछुट, ललितनगर, लश्कर, लहरी, लाडपुरा, लामालोटा, लालनगर, लिकोटी, लिखमीपुर, लिलुआ, लुंगफौ, लुगासी, लुणसू, लुधियाना, लेडुआखाड़, लोसिंहा, लोहरदगा, लोहारा, लैमाखोंग, वंशीपुर, वक्सापुरवा, वटवारा, वडोदरा, वदनेरंगगाई, वर्धा, वल्लभनगर, वाड़ा, वापी, वाराणसी, वासुदेवपुर, वासुदेवा, वाहेगाँव दिमनी, बिछलखा, विजयराघवगढ़, विजराकायाकला, विराटनगर (ने०), विलसंडा, विलासपुर, विशहथ, विशाखापट्टनम, विशाड़, विशुनपुरवा, विसरापार, वीरपुर, वीरपुरा, वैर, वैशाली नगर, व्यावर, शांतिनगर गुलरिया, शान्तिपुर, शाजापुर, शासन, शाहकोट, शाहजहाँपुर, शाहजहाँपुर निनायाँ, शाहतलाई, शाहदरा, शाहपुर, शाहपुर (मगरौन), शाहपुरा, शाहपुरागोगावां, शिकारपुर, शिकोहाबाद, शिमला, शिवपुर, शिवरीनारायण, शिवली, शिवाड़, शिवसागर, शेगाँव, शेखपुर, शेखावटी, श्यामगढ़, श्योपुर, श्यामलाहिल्स, शोरापुर, श्रीगंगानगर, श्रीरामपुर, श्रीरामपुरी भगवानपुर, संगढ़ेसिया, संगमोहाल, संगरिया, संदणा, संगनेश्वरनगर, संगावली, संघर, संघोल, संबलपुर, सआदतगंज, सकरी, सतगढ़मंजेड़ा, सतना, सदरुद्दीनपुर, सन्तोलाबारी, सपलेड, सपिया, समन्ना, सरकंडा, सरदमपिंडरा, सरथुआ, सल्लिया, सरवानिया महाराज, सरसी, सरहुला, सरिया, सरैधी, सरैया प्रवेशपुर, सलखुआ, सलमगाँव, सवाईमाधोपुर, ससना, ससहा, सांगटी, सानड, सागर, सादाबाद, सानण पण्डितान, सामला, सारवाड़ी, सालोन बी, सावड़, सासनी, साहवा, साहू, साहूकारा, सिंगारपुर, सिंगोली, सिंगहा यूसुफपुर, सिंदगाँव, सिंघानी, सिउरी गोपीनाथपुर, सिकन्दरपुर, सिकहुला, सितारगंज, सिन्धौडा जागीर, सिधौली, सिनपुर, सिमलैगर बाजार, सिमरिया, सिमरी, सिरपुर कागजनगर, सिरहौल, सिराई, सिरौली, सिलीगुड़ी, सिवनी, सींगपुरा, सीकर, सीतामढ़ी, सीथल, सीधी, सीनखेड़ा, सीपरीबाजार, सुन्दरी, सुखलिया, सुगवा, सुजानपुरा, सुधारबाजार, सुन्हेत, सुरनगर, सुरपुरा, सुरही, सुरखी, सुर्री, सुल्तानपुर, सुहागपुर, सूरत, सूरजपुर, सेतीखोला, सेनापति, सेमरा, सेमराघुनवारा, सेमराबाजार, सेमराहाट, सेमरीदेव, सेमारी, सेम्फेंजुंग, सेंठा, सेरा (ने०), सेरो, सेलु, सेलोनी, सैंथिया, सैबसू, सैमल चौड़, सोनई, सोनपुरी, सोनवर्षाराज, सोनाहातु, सोनीपत, सोपेंजा नेपाली, सोरखी, सोलन, सोलापुर, हटनी, हथौड़ाखेड़ा, हनुमानगढ़, हनुमानगढ़ भिनगा, हबड़ा, हमीरपुर, हरदा, हरदी, हरदोई, हरसौली, हरिद्वार, हरिशंकरपुर, हरिहरपुर, हलसी, हल्द्वानी, हवाकैंप, हसनपालीया, हसनपुर, हसलपुर, हसुआ, हाजीपुर, हातिखुआ, हातोतोता, हातोद, हाथरस, हामी, हारमा, हालसी, हालीशहरकोना, हिंगनघाट, हिंगोली, हिंडौनसिटी, हिरवार, हिसार, हिगोलकला, हिम्मतगंज, हिरनमगरी, हुबली, हुमायूँपुर, हूर, हैदरगढ़, हैदराबाद, होजाई, होशंगाबाद, होशियारपुर, हौआमौआड।

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

आज सारे संसारमें जीवनकी जटिलताएँ बढ़ती जा रही हैं। अधिकतर लोग अपनी असीमित भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें संलग्न हैं। वे अपने क्षुद्र स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंका अहित करनेमें भी कोई संकोच नहीं करते। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, कलह और हिंसाके वातावरणमें अशान्त स्थिति है। देशके कुछ भागोंमें तो हिंसाका नग्न ताण्डव दिखायी दे रहा है। अधिकतर लोग मानसिक तनावके शिकार बनते जा रहे हैं। कलिका प्रकोप सर्वत्र व्याप्त है। प्रश्न यह होता है कि इस स्थितिका समाधान क्या है? ऋषि-महर्षि, मुनि और शास्त्रोंने इस स्थितिको अपनी अन्तर्दृष्टिसे देखकर बहुत पहलेसे यह घोषित कर दिया है कि 'कलिकालमें मानव-कल्याण और विश्वशान्तिके लिये श्रीहरि-नामके अतिरिक्त कोई दूसरा सुलभ साधन नहीं है।' इसीलिये यह बात जोर देकर शास्त्रोंमें कही गयी है कि 'भगवान् श्रीहरिका नाम ही एकमात्र जीवन है। कलियुगमें इसके अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा—चारा नहीं है'—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(ना०पूर्व० ४१। ११५)

हमारे शास्त्रोंके अतिरिक्त अनुभवी संत-महात्माओंने भी भगवन्नाम-स्मरण-जपको कलियुगका मुख्य धर्म (ऐहिक-पारलौकिक कल्याणकारी कर्तव्य) माना है। इतना ही नहीं, जगत्‌के समस्त धर्म-सम्प्रदाय भी किसी-न-किसी रूपमें भगवान्‌के नाम-स्मरण-जपके महत्त्वको प्रतिपादित करते हैं। नामके जप-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई भी नियम नहीं है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भी कहा है—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।

'हे भगवन्! आपने लोगोंकी विभिन्न रुचि देखकर नित्य-सिद्ध अपने बहुत-से नाम कृपा करके प्रकट कर दिये। प्रत्येक नाममें अपनी सारी शक्ति भर दी और नाम-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई नियम भी नहीं रखा।'

विपत्तिसे त्राण पानेके लिये आज श्रीभगवन्नामका स्मरण ही एकमात्र उपाय है। ऐसा कौन-सा विघ्न है, जो भगवन्नाम-स्मरणसे नहीं टल सकता और ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो नहीं मिल सकती? इस कलिकालमें मंगलमय भगवान्‌के आश्रयके लिये भगवन्नामका सहारा ही एकमात्र अवलम्बन है। अतएव भारतवर्ष एवं समस्त विश्वके कल्याणके लिये, लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक सुख-शान्तिके लिये तथा साधकोंके परम लक्ष्य एवं मानव-जीवनके परम ध्येय—भगवान्‌की प्राप्तिके लिये सबको भगवन्नामका स्मरण-जप-कीर्तन करना चाहिये।

अतः 'कल्याण' के भाग्यवान् ग्राहक-अनुग्राहक, पाठक-पाठिकाएँ स्वयं तथा अपने इष्ट-मित्रोंसे प्रतिवर्ष भगवन्नाम-जप करते-कराते आये हैं।

गत वर्ष पंचानबे करोड़ नाम-जपकी प्रार्थना की गयी थी। इस वर्ष विभिन्न स्थानोंसे जो सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं; उनके अनुसार नब्बे करोड़, उनचास लाख, पैंसठ हजार, चार सौ मन्त्रके नाम-जप हुए हैं, प्रसन्नता है कि इस बार पिछले वर्षकी अपेक्षा श्रीभगवन्नाम-जपकी संख्यामें वृद्धि हुई है। भगवन्नाम-प्रेमी महानुभावोंसे प्रार्थना है कि जपकी संख्यामें विशेष उत्साह दिखलायें, जिससे भगवन्नाम-जपकी संख्यामें और वृद्धि हो सके। आशा है, अधिक उत्साहसे नाम-जप होता रहेगा।

जपकर्ताओंकी सूचना अभीतक लगातार आ रही है, किंतु विलम्बसे सूचना आनेपर उसे प्रकाशित करना सम्भव नहीं है। अतः जपकर्ताओंको जप पूरा होने (चैत्र शुक्ल पूर्णिमा)-के अनन्तर तत्काल सूचना प्रेषित करनी चाहिये, जिससे उनके जपकी संख्या प्रकाशित की जा सके।

आप महानुभावोंसे पुनः इस वर्ष पंचानबे करोड़ भगवन्नाम-मन्त्र-जपकी प्रार्थना की जा रही है। यह नाम-जप अधिक उत्साहसे करना तथा करवाना चाहिये, जिससे भगवन्नाम-जपकी संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

निवेदन है कि पूर्ववत् कार्तिक शुक्ल पूर्णिमासे जप आरम्भ किया जाय और चैत्र शुक्ल पूर्णिमा (वि० सं० २०७३)-तक पूरा किया जाय। पूरे पाँच महीनेका समय है।

भगवान्‌के प्रभावशाली नामका जप स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-शूद्र सभी कर सकते हैं। इसलिये 'कल्याण' के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक सबके परम कल्याणकी भावनासे स्वयं अधिक-से-अधिक जप करें और प्रेमके

साथ विशेष चेष्टा करके दूसरोंसे भी जप करवायें। नियमादि सदाकी भाँति ही हैं।

(१) जप प्रारम्भ करनेकी तिथि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा (दिनांक २५। ११। २०१५ ई०) बुधवार रखी गयी है। इसके बाद किसी भी तिथिसे जप आरम्भ कर सकते हैं, परंतु उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ल पूर्णिमा, वि० सं० २०७३ दिन शुक्रवार (दिनांक २२। ४। २०१६)-को कर देनी चाहिये। इसके आगे भी अधिक जप किया जाय तो और उत्तम है।

(२) सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

(३) एक व्यक्तिको प्रतिदिन उपरिनिर्दिष्ट मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप अवश्य ही करना चाहिये, अधिक तो कितना भी किया जा सकता है।

(४) संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे अथवा अंगुलियोंपर या किसी अन्य प्रकारसे भी रखी जा सकती है। तुलसीजीकी माला उत्तम होगी।

(५) यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समय आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रात:काल उठनेके समयसे लेकर चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए सब समय—सोनेके समयतक इस मन्त्रका जप किया जा सकता है।

(६) बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। पर यदि ऐसा न हो सके तो बादमें अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।

(७) संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं; उदाहरणके रूपमें—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—सोलह नामके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपें तो उसके प्रति मन्त्र-जपकी संख्या १०८ होती है, जिसमें भूल-चूकके लिये ८ मन्त्र बाद कर देनेपर गिनतीके लिये एक सौ मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिन जो भाई-बहन मन्त्र-जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर हमें अन्तमें सूचित करें। सूचना भेजनेवाले सज्जनोंको जपकी संख्याके साथ अपना नाम-पता, मोबाइल नम्बर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखना चाहिये।

(८) प्रथम सूचना तो मन्त्र-जप प्रारम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र पूर्णिमातक जितनी जप-संख्याका संकल्प किया हो, उसका उल्लेख रहे और दूसरी बार जप आरम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या उल्लिखित हो।

(९) प्रथम सूचना प्राप्त होनेपर जपकर्ताको सदस्यता दी जाती है। द्वितीय सूचना भेजते समय सदस्य-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये।

(१०) जप करनेवाले सज्जनको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। स्मरण रहे, ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साहवृद्धिमें सहायक होकर प्रभावक बनते हैं।

(११) सूचना संस्कृत, हिन्दी, मराठी, मारवाड़ी, गुजराती, बँगला, अंग्रेजी, उर्दूमें भेजी जा सकती है।

सूचना भेजनेका पता—

नामजप-कार्यालय, द्वारा—'कल्याण' सम्पादकीय विभाग, गीताप्रेस, पो०—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)

प्रार्थी—

राधेश्याम खेमका

सम्पादक—'कल्याण'

राम जपु, राम जपु, राम जपु बावरे। घोर भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे॥
एक ही साधन सब रिद्धि-सिद्धि साधि रे। ग्रसे कलि-रोग जोग-संजम-समाधि रे॥
भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो, बाम रे। राम-नाम ही सों अंत सब ही को काम रे॥
जग नभ-बाटिका रही है फलि फूलि रे। धुवाँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे॥
राम-नाम छाड़ि जो भरोसो करै और रे। तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे॥

[विनय-पत्रिका]

श्रीभगवन्नाम-जपके जापक महानुभावोंको अपनी स्थायी सदस्य-संख्या एवं नाम-पता (मोबाइल नम्बरसहित) साफ-साफ अक्षरोंमें लिखना चाहिये, जिससे उनके ग्राम/नगरका शुद्ध नाम दिया जा सके। —सम्पादक

श्रीगीता-जयन्ती

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति । तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः । सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥ (गीता ६ । ३०-३१)

'जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता। जो पुरुष एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।'

आजके इस अत्यन्त संकीर्ण स्वार्थपूर्ण जगत्में दूसरेके सुख-दुःखको अपना सुख-दुःख समझनेकी शिक्षा देनेके साथ-साथ कर्तव्य-कर्मपर आरूढ़ करानेवाला और कहीं भी आसक्ति-ममता न रखकर केवल भगवत्सेवाके लिये ही यज्ञमय जीवन-यापन करनेकी सत्-शिक्षा देनेवाला सार्वभौम ग्रन्थ 'श्रीमद्भगवद्गीता' ही है। इस ग्रन्थका विश्वमें जितना अधिक वास्तविक रूपमें प्रचार-प्रसार होगा, उतना ही मानव सच्चे सुख-शान्तिकी ओर बढ़ सकेगा।

मार्गशीर्ष शुक्ल ११ (एकादशी), सोमवार, दिनाङ्क २१ दिसम्बर २०१५ ई० को श्रीगीता-जयन्तीका महापर्व दिवस है। इस पर्वपर जनतामें गीता-प्रचारके साथ ही श्रीगीताके अध्ययन—गीताकी शिक्षाको जीवनमें उतारनेकी स्थायी योजना बननी चाहिये। आजके किंकर्तव्यविमूढ़ मोहग्रस्त मानवके लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है। इस पर्वके उपलक्ष्यमें श्रीगीतामाता तथा गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्णका शुभाशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये नीचे लिखे कार्य यथासाध्य और यथासम्भव देशभरमें सभी छोटे-बड़े स्थानोंमें अवश्य होने चाहिये—

(१) गीता-ग्रन्थ-पूजन। (२) गीताके वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण तथा गीताको महाभारतमें ग्रथित करनेवाले भगवान् व्यासदेवका पूजन। (३) गीताका यथासाध्य व्यक्तिगत और सामूहिक पारायण। (४) गीता-तत्त्वको समझने-समझानेके हेतु गीता-प्रचारार्थ एवं समस्त विश्वको दिव्य ज्ञानचक्षु देकर सबको निष्कामभावसे कर्तव्य-परायण बनानेकी महती शिक्षाके लिये इस परम पुण्य दिवसका स्मृति-महोत्सव मनाना तथा उसके संदर्भमें सभाएँ, प्रवचन, व्याख्यान आदिका आयोजन एवं भगवन्नाम-संकीर्तन आदि करना-कराना। (५) महाविद्यालयों और विद्यालयोंमें गीता-पाठ, गीतापर व्याख्यान, गीता-परीक्षामें उत्तीर्ण छात्र-छात्राओंको पुरस्कार-वितरण आदि। (६) प्रत्येक मन्दिर, देवस्थान, धर्मस्थानमें गीता-कथा तथा अपने-अपने इष्ट भगवान्का विशेषरूपसे पूजन और आरती करना। (७) जहाँ किसी प्रकारकी अड़चन न हो, वहाँ श्रीगीताजीकी शोभायात्रा (जुलूस) निकालना। (८) सम्मान्य लेखक और कवि महोदयोंद्वारा गीता-सम्बन्धी लेखों और सुन्दर कविताओंके द्वारा गीता-प्रचार करने और करानेका संकल्प लेना, तदर्थ प्रेरणा देना और (९) देश, काल तथा पात्र (परिस्थिति)-के अनुसार गीता-सम्बन्धी अन्य कार्यक्रम अनुष्ठित होने चाहिये।

—सम्पादक

प्र० ति० २०-१०-२०१५
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR–13/2014–2016
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014–2016